तरुण-भारत-ग्रन्थावली—सं० १३

हृदय का काँटा

लेखिका

कुमारी तेजरानी दीक्षित बी० ए०

प्रकाशक

तरुण-भारत-ग्रन्थावली-कार्यालय,

दारागंज, प्रयाग

प्रथमावृत्ति } सं० १९८५ वि० { मूल्य १॥) रु०

परिचय

हमारे मित्र, खीरी-लखीमपुर के वकील, श्रीयुत पण्डित सूर्य्यनारायण दीक्षित एम० ए० एल-एल० बी० हिन्दी के उन लेखकों में से हैं जिन्होंने अपने जीवन के प्रभात-काल में आशा-जनक प्रतिभा का परिचय देकर क्रमशः लेखनी को विश्राम दिया और अन्य व्यवसायों में अपना पूर्ण समय, शक्ति और ध्यान लगाकर मातृभाषा को अपनी सेवाओं से वञ्चित रक्खा है। इस ग्रन्थ—'हृदय का काँटा'—की लेखिका श्रीमती तेजरानी दीक्षित बी० ए० उक्त दीक्षितजी की ही सुपुत्री हैं। अतएव हिन्दी-साहित्य-सेवा के क्षेत्र में हम उनका स्वागत करने के साथ साथ यह अनुरोध भी करते हैं कि वे अपने श्रद्धेय पिता के उपर्युक्त आलस्य का बदला चुकाने के लिए दुगुनी शक्ति और उत्साह के साथ साहित्यिक क्रिया-शीलता में दत्त-चित्त हों।

पाश्चात्य भाषाओं की तो बात ही जाने दीजिए, इसी देश की बँगला-भाषा-भाषिणी अनेक देवियों ने उच्च कोटि के ग्रन्थों का निर्म्माण करके अपनी मातृभाषा का मुख उज्ज्वल किया है। खेद है, हमारे यहाँ की शिक्षिता महिलाओं ने अभी तक इस ओर उपेक्षा ही प्रदर्शित की है। ऐसी स्थिति में श्रीमती तेजरानी दीक्षित का मातृभाषा-प्रेम सर्व्वथा सराहनीय है। हमारा उनसे निवेदन है कि इस क्षेत्र की ओर वे पूर्ण गम्भीरता और मनोयोग-पूर्व्वक अग्रसर हों और अपनी मनोहर रचनाओं-द्वारा अन्य महिलाओं को भी हिन्दी की ओर आकर्षित करें।

'हृदय का काँटा' लेखिका की प्रथम रचना है। इसमें प्रगल्भता और प्रौढ़ता भले ही न हो; किन्तु सरलता, सुरुचि, और माधुर्य्य का अभाव नहीं है। इस ग्रन्थ-द्वारा लेखिका ने विशेषकर हिन्दू-समाज की एक मार्म्मिक दुर्ब्बलता की ओर, विधवाओं की असहाय अवस्था की ओर, पाठकों का ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा की है। अशिक्षिता, कुरूपा, किन्तु अत्यन्त

पति-परायणा प्रतिभा के रहन-सहन से असन्तुष्ट महेश अपनी रूपवती विधवा साली मालती के प्रेम में पड़कर उच्छृङ्खलता का आचरण कर बैठता है और जब इसके परिणाम-स्वरूप प्रतिभा गृहत्याग कर कहीं चली जाती है तब महेश मालती को लिये लिये अनेक स्थानों में विचरण करता है। कालान्तर में महेश निर्धन हो जाने पर मालती को त्याग देता है और मालती हिन्दू-समाज में अनाश्रित होने के कारण वेश्या-जीवन अङ्गीकार करने पर विवश होती है। परन्तु मालती के हृदय में सदाचार का अंकुर विद्यमान रहता है और अनधिक काल में ही वह एक स्वयंसेवक की सहायता से प्रायश्चित्त-द्वारा आत्म-संशोधन करके आदर्श उपकारिणी देवी के रूप में परिणत हो जाती है। महेश के प्रति उसके हृदय में फिर भी प्रेम रहता है; परन्तु यह प्रेम अब प्रतिभा के सर्व्वस्व को छीनने का प्रयत्न नहीं कर सकता—वह तो त्याग की त्रिवेणी में स्नान करके पतितपावन हो जाता है; और न अब वह किसीके 'हृदय का काँटा' हो सकता है; क्योंकि उद्दाम वासना के जिस वन में ये काँटे औरों के कलेजे में गड़ने के लिए सिर उठाते हैं, अब तो वही उजड़ जाता है।

यही इस उपन्यास के कथानक का मुख्य अंश है; परन्तु इसके अनुषंग से और भी कई मनोहर घटना-चित्र पाठकों को इसमें देखने को मिलेंगे। निदान, इस उपन्यास का आरम्भ जैसा चित्ताकर्षक है वैसा ही अन्त भी शुभ और कल्याणमय शिक्षा का देनेवाला है।

आशा है कि हिन्दी-जगत् की प्रथम मौलिक उपन्यास-लेखिका की इस प्रथम रचना का समुचित समादर करके पाठकगण उसका उत्साह-वर्द्धन करेंगे।

लेखक-मण्डल-कार्यालय,
दारागंज, प्रयाग
आषाढ़ कृ० २ सं० १९८५

लक्ष्मीधर वाजपेयी
गिरिजादत्त शुक्ल (बी० ए०)

हृदय का काँटा

१

ग्रीष्म के दोपहर के सन्नाटे को भेदती हुई बालिका कनकलता अपनी माँ प्रतिभादेवी से बोली—माँ, क्या कोई लड़की लड़का बन सकती है ?

छः वर्ष की बालिका का अद्भुत प्रश्न सुनकर प्रतिभा ने उसे झिड़क दिया—हट ! क्या बे-सिर-पैर की बातें करता है ! ज़रा सो लेने दे, बहुत थक गई हूं।

प्रतिभा दूसरी ओर करवट बदलकर सोने की चेष्टा करने लगी। किन्तु कनक की आँखों में नींद कहाँ ! लड़की और लड़के के भेद ने उसके बाल-हृदय को भी न छोड़ा। वह पड़ी-पड़ी सोचने लगी—अहा ! यदि मैं लड़का बन जाऊँ तो कैसा अच्छा हो ! तब दादी मुझे भी नित्य एक लड्डू देगी—मुझे भी स्कूल भेजेगी। ख़ूब मौज रहेगी !

बालिका अपने सुख-स्वप्न में लवलीन थी कि किसी ने दरवाज़े पर धक्का मारकर उसका स्वप्न तोड़ दिया। कनक ने घबड़ाकर अपनी माँ को जगाया; किन्तु धक्का सुनकर प्रतिभा की नींद पहले ही उचट गई थी। दरवाज़ा खोलने के लिये वह उठ ही रही थी कि वृद्धा ने दरवाज़े पर फिर से धक्का दिया और साथ-ही साथ अपने वाक्‌वाणों की मधुर वर्षा भी की—बहू क्या है—

तमाशा है ! काम के नाम पर मौत आती है। बाप के घर तो जैसे पलंग से पैर ही नीचे नहीं उतारती थीं। जब देखो तब सोना ! जूठे बर्तन कुत्ते घसीट रहे हैं; लेकिन इसे कुछ चिन्ता ही नहीं। अरे भाई, सोने की भी कोई हद होती है। रात भर क्या पहाड़ ढाये थे जो दिन में सोने की ज़रूरत पड़ी ?

प्रतिभा अभी सो भी नहीं पाई थी। इतने वाक्‌वाण सहकर चुपचाप दरवाज़ा खोल दिया। साथ में कनक भी उठ आई और सामने दादी को देखकर माँ का पल्ला पकड़कर खड़ी हो गयी। प्रतिभा को देखकर वृद्धा का गुस्सा भभक उठा। थोड़ी देर तक विष उगलकर अपने हृदय की जलन मिटाते हुए वृद्धा बोली—

बोल ! इस समय सोने क्यों आई थी ?

प्रतिभा ने कुछ सहमकर उत्तर दिया—मैं सोई नहीं थी। कनक काम नहीं करने देती थी, इसीसे उसे सुलाने आई थी।

प्रतिभा मन में डर गयी। कहीं ऐसा न हो कि कनक बोल उठे और सारा भंडा फूट जाय; क्योंकि, इस समय कनक नहीं, स्वयं प्रतिभा सोना चाहती थी। रात को बारह बजे वह सोई थी और सुबह चार बजे उठने से उनकी नींद पूरी नहीं हुई थी। जेठ महीने की भयानक धूप देखकर उसको साहस न हुआ कि आग के समान जलते हुए आंगन में बैठकर बर्तन मांजती। सास को सोती देखकर वह थोड़ी देर के लिये कमरे में आ गई थी और सोचा था कि सास के जगने से पहले ही मैं चौका-बर्तन कर लूँगी। किन्तु सास की आँखें न मालूम कहाँ से खुल गईं। प्रतिभा डर के मारे थरथर काँपने लगीं। कनक यद्यपि बालिका थी, तथापि अपनी दादी का व्यवहार देखते-देखते वह अपनी अवस्था से कहीं अधिक गम्भीर और बुद्धिमती हो गई थी। ऐसा अवसर प्रायः रोज़ ही आता था जब वह सारा दोष अपना मानकर अपनी माँ

को बचाया करती थी। बालिका सब समझ गई और चुपचाप खड़ी-खड़ी कातर नेत्रों से अपनी दादी की ओर देखने लगी। किन्तु दादी ने उधर नहीं देखा। वह प्रतिभा की बोली सुनकर गरज पड़ी—

"बराबर ज़बान लड़ाये चली जा रही है! क्या कनक ज़रा सी बच्ची थी जो अकेली नहीं सो सकती थी! लड़की को बे-तरह सिर पर चढ़ा लिया है। लड़की है, तब तो यह हालत; और जो कहीं लड़का होता तो शायद ज़मीन पर पैर न रखती........"

वृद्धा थोड़ी देर चुप होकर सांसे लेने लगी—मानो बड़ा भारी काम करके अब अपनी थकन मिटा रही हो। कुछ देर में वह फिर बड़बड़ाने लगी—काम प्यारा होता है, चाम नहीं। काम नहीं करोगी तो मेरी बला से! चाहे रहो, चाहे भट्टी में जाओ।

वृद्धा अपने गुस्से की आग में भुनती हुई एक ओर को चल दी। प्रतिभा भी चुपचाप जूठे बर्तनों की ओर चल दी। केवल कनक दरवाज़े पर खड़ी रही। उसके छोटे से हृदय में यह एक प्रश्न बार-बार उठकर हलचल मचा रहा था—"जो मैं लड़का होती, क्या तो भी दादी माँ को इसी तरह डाँटतीं? क्या अब मैं लड़का नहीं बन सकती"? उसने अपने चारों ओर देखा; किन्तु कहीं से उसे उत्तर न मिला। एक बार उसने शून्य दृष्टि से ऊपर आसमान की ओर देखा, फिर बाहर चली गई।

२

प्रतिभा मधुपुर गाँव के ज़मीन्दार के एकमात्र पुत्र बाबू महेशचन्द्र की पत्नी है। बाबू महेशचन्द्र की बुद्धि-प्रखरता, उनके पिता की मान-प्रतिष्ठा, यशसौरभ दूर-दूर तक फैला हुआ है। इसी सौरभ से आकर्षित होकर प्रतिभा के पिता ने अपनी पुत्री की शादी महेशचन्द्र के साथ कर दी। प्रतिभा के पिता एक मामूली हैसियत के आदमी थे। महेशचन्द्र ऐसा सुन्दर, बुद्धिमान्, पढ़ा-लिखा, धनवान् लड़का उनको और कहाँ मिल सकता था। कन्या के ही भाग्य से संयोगवश ऐसा घर-बर मिला। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से अपनी पुत्री को उसके नये घर भेजा। किन्तु कौन जानता था कि गुलाब में भी काँटे होते हैं। उन्होंने न मालूम कितना कर्ज़ लेकर अपनी पुत्री के ब्याह में लगा दिया; किन्तु प्रतिभा की सास की आँखों में वह कुछ उतरा ही नहीं। नवागता बहू का स्वागत तानों की झड़ी से किया गया। नयी बहू ने रोते-रोते नये घर में प्रवेश किया। प्रतिभा यदि कुरूपा नहीं थी तो अनुपम सुन्दरी भी नहीं कही जा सकती थी। उसके सौन्दर्य-विहीन रूप ने उसके दुःखों की मात्रा और बढ़ा दी। कनक के जन्म ने उसके ऊपर दुःखों का पहाड़ ढा दिया। पहले महेश के पिता के मन में इस नयी बहू के लिए कुछ सहानुभूति थी; किन्तु घर में लड़की का जन्म सुनकर वह भी कहने लगे—

ओफ़ ! किस बला को मैंने महेश के सिर मढ़ दिया। इतने छोटे घर की लड़की लाकर मैंने अपने निर्मल कुल में कलंक लगा दिया। अभागिनी ने लड़कियों पर ही नम्बर लगाया !

बस तभी से घर का चौका-बर्तन भी प्रतिभा के सिर पड़ा। सुबह

चार बजे से रात के ग्यारह बजे तक प्रतिभा तेली के बैल के समान काम में जुटी रहती; किन्तु फिर भी अपने सास-ससुर को प्रसन्न न कर सकी। वह किसी प्रकार भविष्य की आशा लगाये अपने प्राण धारण कर रही थी। सोचती थी कि कभी तो दुःखों का अन्त होगा। महेशचन्द्र की पढ़ाई समाप्त होने में—उसके दिनों के फिरने में—केवल एक साल बाकी रह गया। प्रतिभा जब कभी दुःखों से व्याकुल हो जाती, अपनी इसी विचार-धारा में कूदकर शान्ति पाती। उसे नहीं मालूम था कि उसके साँवले रङ्ग ने, बिखरे हुए बालों ने, धब्बे पड़ी हुई मैली चीकट धोती ने, बर्तनों की स्याही से रँगे हुए कोमल हाथों ने उसके भाग्यचक्र की गति उल्टी कर दी थी। महेशचन्द्र एक बार छुट्टियों में घर आये थे। उस समय प्रतिभा बर्तन मांज रही थी और अपने बालों की एक लट को बर्तनों पर से हटा रही थी, जो बार-बार आकर बर्तनों पर पड़ रही थी, मानो प्रतिभा का काम बँटाना चाहती हो। जूठन के ऊपर मक्खियों का झुंड मँडरा रहा था, जो कभी-कभी अवसर पाकर प्रतिभा की मैली धोती के धब्बों पर बैठ जाता। कालेज के सुशिक्षित फैशनेबिल बाबू महेशचन्द्र के मन में इस दृश्य को देखते ही एकाएक भाव उठा—
"ओफ़! कितनी गन्दी है"—

महेशचन्द्र घृणा से मुँह फेरकर अपनी मा के कमरे की तरफ़ मुड़े।

महेशचन्द्र के मन में तभी से प्रतिभा के लिए घृणा उदय हो गई और यह भाव दिन पर दिन बढ़ने लगा; क्योंकि प्रतिभा को वह सदा उसी भेष में पाते। महेश ने बड़ी कठिनता से इस भाव को मन में रक्खा और किसी प्रकार अपनी छुट्टियाँ बिता-कर अपने कालेज में चले गये। इधर प्रतिभा अपने भावी

सुखों की आशा लगाये अपने दुःखों के दिन गिन-गिन-कर काटने लगी।

३

समय बीतते देर नहीं लगती। एक साल बात करते निकल गया और जाते-जाते अपना नया रङ्ग भी दिखला गया। उस साल मधुपुर में बहुत ज़ोर से इन्फ्ल्युएंज़ा चला, जिसके धावे को प्रतिभा के वृद्ध सास-ससुर नहीं सह पाये। कुछ ही दिनों का अन्तर देकर दो के दोनों स्वर्ग सिधारे। प्रतिभा के पति महेश की पढ़ाई समाप्त होते-होते उनके सिर पर ज़मीन्दारी का भी बोझ पड़ गया। महेश ने बड़ी धीरता से इस नये दुःख के आगे अपना सिर झुका दिया। प्रतिभा का सामना बचाने के लिये रात-दिन ज़मीन्दारी के ही इन्तज़ाम में लगे रहते। प्रतिभा महेश के परिश्रम को देखकर मन ही मन सराहती और जब कभी महेश से साक्षात् हो जाता तो कम परिश्रम करने के लिये उनसे प्रार्थना करती। महेश भी नीची दृष्टि किये इधर-उधर का बहाना करके जल्दी से चले जाते।

महेश ने प्रतिभा के सम्मुख अपना भाव दर्शाना उचित न समझा और न कभी उन्होंने यह जानने का ही प्रयत्न किया कि क्या प्रतिभा सचमुच उतनी ही गन्दी है जितना वे उसे समझते हैं। महेश ने अपने भावों को मन में ही दाबकर प्रतिभा को प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया। प्रतिभा अपने इस नये सुख, में ज़मीन्दार की पत्नी की हैसियत से रहने लगी। सात

साल की कनक के भी अब दिन फिरे। दिन-रात वह अपने गेंद में ही मग्न रहती। सब प्रसन्न थे सिवाय महेश के। महेश का रहा-सहा सुख भी गायब हो गया। तब तो सिर्फ़ छुट्टियों में थोड़े दिनों के लिये अपना भाव छिपाना पड़ता था, किन्तु अब तो वह हर घड़ी का काम हो गया। उधर ज़मीन्दारी का बोझ, इधर मन की घुटन। धीरे-धीरे महेश बीमार पड़ गये। प्रतिभा घबड़ा गई और महेश की सेवा में उसने रात-दिन एक कर दिया। महेश को अब अपना भाव छिपाने में और भी कठिनता होने लगी। प्रतिभा की सूरत देखते ही वह चिड़चिड़ा उठते। महेश की दशा दिन पर दिन ख़राब होने लगी। लाचार होकर प्रतिभा ने अपनी चचेरी बहिन मालती को बुलवा लिया।

मालती बाल-विधवा थी। जब से उसने होश सम्हाला तब ही से उसे विधवा भेष धारण करना पड़ा। कब उसका विवाह हुआ, कब वह विधवा हुई, इसका उसे कुछ ज्ञान नहीं था। वह केवल यह जानती थी कि वह विधवा है। जब तक वह बच्ची रही तब तक तो खूब हँसती-खेलती रही। अपने अन्धकारमय जीवन में उसने प्रकाश की वही क्षीण रेखा देखी थी—वही उसके जीवन का मधुर प्रातःकाल था। उसके बाद ? उसके बाद उसे अपनी दशा का ध्यान कराया गया। सुख-आराम सब उसे तब ही से त्यागने पड़े और अनिच्छा होते हुए भी संन्यासव्रत रखना पड़ा। सुबह उठती, पूजा-पाठ करती और रात को पूजा-पाठ करती ही सोती। सप्ताह में कोई चार दिन निर्जल व्रत रखती और कभी-कभी एक-एक अक्षर जोड़कर थोड़ी-बहुत रामायण पढ़ती। खेल-कूद की अवस्था बीतते बीतते उसे संन्यासव्रत धारण करना पड़ा। प्रतिभा को अपने विवाह के समय इसी बहिन की याद आ गई। बहाना पाते ही मालती की सुसराल-

वालों ने बड़ी ख़ुशी से अपने सिर की बला टाली। अस्तु।

कई रातें जाग जाग कर, कितने ही दिन भूखे प्यासे रह रह कर महेश की सेवा करते-करते प्रतिभा थक गई थी। मालती ने आते ही अपनी बहिन को इस कष्ट से बचाया और महेश को सेवा का सारा भार अपने सिर ले लिया। मालती समझती थी कि यदि महेश जीवित न रहे तो प्रतिभा की क्या दशा होगी। उसे उस जीवन का स्वयं अनुभव था। अतएव अपनी बहिन प्रतिभा के उस अन्धकारमय भविष्य को प्रकाशित करने के लिये मालती ने अपना जप-तप, पूजा-व्रत, सब छोड़ दिया और एकाग्र मन से महेश की सेवा में जुट गई।

रात का समय था। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। कभी-कभी झींगुर की झिनझिनाहट उस सन्नाटे को भेदने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही थी। प्रतिभा कनक के साथ निद्रादेवी की गोद में लेटकर अपनी थकन मिटा रही थी। दूसरे कमरे में मालती इस समय भी कुरसी पर बैठी हुई निद्रित महेश को हवा कर रही थी। खिड़की में से चन्द्रमा की किरणें महेश के मुँह पर आ आ कर नाच रही थीं। वायु का मंद झकोरा महेश के घुँवराले बालों को बार बार छेड़ रहा था। मालती चुपचाप पंखा कर रही थी और मन में न मालूम क्या-क्या सोचती जाती थी। वह बार-बार सजे हुए कमरे में चारों ओर देखती और मन ही मन हँसती, किन्तु दूसरे ही क्षण एक दीर्घ निःश्वास लेती और चुप हो जाती। मालती अपनी इसी उधेड़-बुन में लगी थी कि एकाएक घड़ी ने दो का घण्टा बजाकर उसका ध्यान अपनी तरफ़ खींचा। मालती चौंककर खड़ी हो गई और मेज़ के पास जाकर दवा नापने लगी। पंखे के रुकने से गर्मी बढ़ गई, जिससे महेश जाग पड़े और कराहते हुए करवट बदलने

लगे। मालती दवा का गिलास आगे लाकर बोली—दवा पी लीजिये।

महेश ने करवट बदलते हुए कहा—नहीं, अब दवा नहीं पिऊंगा।

मालती चुपचाप गिलास लिये खड़ी रही। चन्द्रमा की किरणें अब महेश को छोड़कर मालती के मुँह पर नाचने लगीं। महेश की नींद कुछ उचट सी गई थी। उन्होंने फिर करवट बदली और आंखें खोलीं। सामने गिलास लिये हुए मालती अब भी खड़ी थी। रातों जागने से उसकी आंखों में नींद छा रही थी और सारा अंग शिथिल हो गया था। महेश ने एक बार मालती की तरफ़ देखा, फिर आत्मग्लानि से उनकी आँखें अपने आप ही नीचे झुक गयीं।

उन्होंने आँखें नीची किये ही कहा—तुम अभी तक खड़ी ही हो।

वे समझते थे कि मालती इसके उत्तर में कुछ बड़बड़ायेगी और उनको भला-बुरा कहेगी। किन्तु मालती ने ज़रा भी ऐसा भाव नहीं दर्शाया। उसने उत्तर में केवल यह कहा—फिर क्या करती? आप ने दवा तो पी ही नहीं थी।

महेश के ऊपर घड़ों पानी पड़ गया। यदि मालती उनसे दवा पीने के लिये कई बार कहती और अपने कष्ट को दर्शाने का बार बार प्रयत्न करती तो शायद महेश के ऊपर इतना असर न होता, जितना कि मालती के इस मूक अनुरोध का और अपना कष्ट छिपाने के प्रयत्न का हुआ। उन्होंने दवा के लिये हाथ बढ़ा दिया और अपने को मन में हज़ारों बार धिक्कारते हुए बोले—

मुझे मालूम नहीं था कि तुम अभी तक खड़ी हो। अच्छा लाओ अब पी लूँ।

मालती ने चुपचाप गिलास पकड़ा दिया। महेश गिलास

को होठों तक ले गये कि एकाएक उन्होंने गिलास हटा दिया। मानो कोई बात याद आ गयी हो। बोले—मालती, तुम्हारी बहिन कहाँ हैं ?

मालती ने धीरे से उत्तर दिया—अपने कमरे में।

महेश—क्या कर रही हैं ?

मालती ने दूसरी तरफ़ देखते हुए कहा—मुझे ठीक से नहीं मालूम। शायद सो रही हैं।

महेश के मुँह से एकाएक निकल गया—"हूँ" ! फिर वे किसी विचार-धारा में निमग्न हो गये। मालती ने देखा कि महेश के हाथ में गिलास अब भी ज्यों का त्यों है। उसने कुछ सहमते हुए कहा—"दवा जल्दी पी लीजिये। नहीं तो ख़राब हो जायगी।" महेश ने फिर सिर उठाया। मालती उस समय दूसरी तरफ़ देख रही थी। उसके मुँह पर बार-बार कुछ भाव आते; किन्तु एक क्षण से अधिक देर तक नहीं रुकते। एकाएक मालती के मुँह पर एक हलकी सी लाली छा गयी। महेश मन्त्र-मुग्ध के समान उसकी तरफ़ देखने लगे।

अचानक मालती ने भी दृष्टि फेरी और देखा कि महेश भी उसकी तरफ़ देख रहे हैं। मालती को अपनी तरफ़ देखते देखकर महेश बोले—

मालती, क्या एक प्रश्न का उत्तर दोगी ?

मालती—जी हाँ। जहाँ तक उत्तर दे सकूँगी वहाँ तक देने का प्रयत्न करूँगी।

महेश ने एक बार फिर मालती की तरफ़ देखा। फिर साहस करके बोले—मालती, मेरे लिये तुम्हें इतनी चिन्ता क्यों है जो रात रात भर जागती रहती हो ? जिनको होनी चाहिये वह तो आराम से सोती हैं।

मालती ने देखा, महेश के मुँह पर एक अद्भुत भाव छा रहा है। उससे महेश के मुँह की तरफ़ और न देखा गया। एक क्षण में उसका उठा हुआ सिर नीचे झुक गया। वह धीरे से बोली—कहीं भी तो नहीं। मैं तो आप का कुछ काम नहीं करती, जिनको करना चाहिये, वही करती हैं।

मालती का एक-एक शब्द महेश के कानों में गूँज गया। उनके हृदय में खलबली मच गयी। वह सोचने लगे—

मालती सच तो कहती है। जिनको करना चाहिये वही तो मेरा काम करती हैं। मालती के सिवाय और किसको मेरा काम करने का अधिकार है? क्या केवल भाँवरें पड़ने से प्रतिभा को सब अधिकार मिल गया?

महेश ने जल्दी से दवा पी ली और चुपचाप लेट गये। मालती भी पङ्खा लेकर फिर अपनी जगह पर बैठ गयी। उसके मन में महेश वाला प्रश्न बार-बार उठ रहा था—मेरे लिये तुम्हें इतनी चिन्ता क्यों है जो रात रात भर जागती हो? जिनको होनी चाहिये वह तो आराम से सोती हैं।

मालती अपने मन से आप ही पूछने लगी—ठीक तो है। मुझे इतनी चिन्ता क्यों है जो मैं लाख बहाने करके इनके पास बैठी रहती हूँ? हाँ, मुझे इनका काम करने का क्या अधिकार है?

मालती चुपचाप महेश की तरफ देखने लगी। थोड़ी देर बाद उसके मन में फिर विचार उठा—अच्छा, माना। मुझे इनकी सेवा करने का कोई अधिकार नहीं है, तो भी क्या सेवा करना पाप है? इन्हें मेरा काम इतना बुरा क्यों लगता है?

मालती ने फिर महेश की तरफ़ देखा। इस बार महेश कुछ जागते हुए मालूम पड़े। महेश सचमुच में जाग रहे थे और आखें बन्द किये सोच रहे थे—प्रतिभा, तुम किस घमंड में भूली

हो। तुम्हारे पास न रूप है न गुण। तुम इतनी गन्दी हो कि तुम्हें देखते ही घृणा होती है। मुझे पाकर तुम्हें अपना भाग्य सराहना चाहिये। लेकिन तुम मेरी परवाह भी नहीं करतीं। इधर देखो, अनिन्द्य सुन्दरी मालती मेरे लिये कितनी व्याकुल रहती है। बिचारी ने कभी सुख नहीं जाना। जब मैंने दवा पीने के लिये मना किया तो बिचारी का कैसा मुँह बन गया था।

महेश पहले नहीं सोये थे; किन्तु अब न मालूम किस समय वे सोचते ही सोचते सो गये। ऊपर नीलाकाश में चन्द्रदेव भी अपनी किरणों को नाचना समाप्त करने की आज्ञा देकर जल्दी जल्दी चलने लगे।

४

रात्रि का अन्धेरा चारों ओर छा रहा है। सब प्राणी निद्रादेवी की शान्तिमयी गोद में विहार कर रहे हैं। सन्नाटा रात्रि की भयङ्करता को और बढ़ा रहा है। इस समय बाबू महेशचन्द्र के घर के दुमंजिले पर के कमरे की खिड़की से कुछ प्रकाश निकलकर रात्रि की भयङ्करता को घटाने का व्यर्थ ही प्रयत्न कर रहा है। महेशचन्द्र ऐसे सज्जन के यहाँ यह कौन व्यक्ति इतना दुखी है जो रात को भी निद्राविहीन आँखों में बिताना चाह रहा है। व्यक्ति दुखी अवश्य है, क्योंकि नींद या तो अधिक सुख में या अधिक दुख में नहीं आती। यदि सुख होता तो घर का एक ही कमरा नहीं, किन्तु प्रत्येक कमरा जगमगाता।

खिड़की में एक स्त्री चुपचाप बैठी हुई, न मालूम क्या, बाहर

आसमान की तरफ़, एकटक से देख रही है। यह स्त्री कौन है? चेहरा तो कुछ-कुछ पहचाना हुआ सा मालूम होता है। ज़रा ध्यान से देखिये, यह तो प्रतिभा मालूम होती है। इतने बड़े घर की गृह-स्वामिनी, लाखों रुपयों की मालकिन, प्रतिभा पर आज क्या दुःख आया है, जिसके कारण वह इस समय इतनी उदास है। अब उसका वह गोल मुँह सूखकर कुछ लम्बा सा हो गया है, गाल भी पिचक गये हैं, जिससे मालूम होता है कि आज ही नहीं, उसने इससे पहले भी कई रातें यों ही चिन्ता में जाग-कर बिता दी हैं। उसकी आँखों से निराशा टपक रही है। प्रतिभा ने एकाएक सिर उठाया और एक नैराश्यपूर्ण दृष्टि अपने चारों तरफ़ दौड़ा दी, फिर अपने आप ही बड़बड़ाने लगी—

नहीं, अब मेरा कुछ नहीं है। अभी तक था तो क्या हुआ। जिनके कारण यह सब मिला था, अब उनके ही लिये सब कुछ छोड़ दूँगी। यदि उनको ही सुख न मिला तो मेरे सुख मिलने से क्या? यदि एक बार उन्हें सुखी देख लूँ तो हज़ारों दुःखों में भी मुझे सुख मालूम होगा।

संसार में किसका क्या होता है। एक दिन तो सब छूटता ही है, फिर आज ही से क्यों न अपना अधिकार छोड़ दूँ। उन को सुखी करने का केवल यही उपाय है। नहीं, अब मेरा यहाँ कुछ नहीं है। मैं अपना सारा अधिकार इसी समय से छोड़ दूँगी। यह मशहरी अभी मेरी थी—यह मेज़, यह कुरसी, यह अलमारी, सब कुछ, अभी थोड़ी देर पहले मेरा था। मैं चाहती तो उसको सम्हाल कर रखती, मैं चाहती तो उसे तोड़ फेंकती। किन्तु, अब × × ×। जाओ, सब जाओ, मुझे तुमसे कुछ मतलब नहीं।

पास ही मशहरी में लेटी हुई कनक कुनमुनाने लगी। प्रतिभा जल्दी से कनक को थपथपाने लगी और अपने आप ही इस प्रकार बोलने लगी, मानो वह बालिका सब कुछ सुनती हो—

नहीं। मेरी बेटी, तू क्यों घबड़ाती है? मैं तुझे छोड़ कर कहीं नहीं जा सकती। रुपया-पैसा, धन-दौलत सब छोड़ दूँगी लेकिन तुम्हें नहीं छोड़ सकूँगी।

कनक मानों सब समझ गई और अपनी माँ को पकड़े पकड़े थोड़ी देर में फिर सो गई। प्रतिभा भी सोने की चेष्टा करने लगी; किन्तु उसके लिये नींद कहाँ! उसके मुँह से फिर शब्द सुनाई पड़ने लगे—

ऊँह। मैं भी क्या हूं। मेरा स्वभाव कितना नीच है। व्यर्थ ही मैं बात का बतंगड़ बनाती हूँ। नहीं, वह देखता है। वे कभी ऐसा कर ही नहीं सकते। फिर मेरी बहिन भी तो साध्वी तपस्विनी है। वह मुझे कितना चाहती है! क्या उसके समान प्रेम करनेवाली बहिन कभी मेरे गले पर उल्टी छुरी चला सकती है? बिचारी मालती तो मेरे एक बूंद पसीने की जगह अपने ख़ून की धार बहाने के लिये तैयार रहती है। मुझे आराम देने के लिये उसने अपने आराम की कुछ परवाह नहीं की और रातों जागकर उनका सारा काम करती है। उसी सरल हृदयवाली बहिन के लिये मेरे मन में ऐसे नीच विचार उठते हैं। जब उसे मेरे विचार मालूम होंगे तो उसे कितना दुःख होगा। वह तो योंही जन्म-दुःखिनी है। मैं और जले पर नमक छिड़कना चाहती हूं। छिः ....।

प्रतिभा चुप हो गई और सशंकित दृष्टि से अपने इधर-उधर देखने लगी कि कहीं किसी ने उसकी बातें सुन ली हों। ऊपर

चन्द्रदेव प्रातःकाल निकट जानकर जल्दी-जल्दी अपनी आकाश-यात्रा समाप्त कर रहे थे। प्रतिभा को ऐसा मालूम हुआ मानो वे उससे घृणा करके भागे जा रहे हैं। अनगिनती तारे अपना क्षीण प्रकाश लिये हुए प्रतिभा की खिड़की से झाँक रहे थे। प्रतिभा को ऐसा मालूम हुआ मानो प्रतिभा के विचार जानकर वे स्वयं लज्जित हो रहे हों। प्रतिभा और न देख सकी। आत्मग्लानि से रो पड़ी। सारा संसार अपना दुःख और चिन्ता भूलकर सुख से शयन कर रहा था। केवल प्रतिभा ही उस सुख से वंचित थी। रोते-रोते प्रतिभा की हिचकियाँ बँध गयीं।

एकाएक स्वप्न में उठकर कनक रो पड़ी। मानो उस छोटी बालिका ने अपनी माँ का साथ दिया हो। अपनी पुत्री को रोते देख प्रतिभा अपना सारा दुख भूल गई और उसे चुप कराने की कोशिश में लग गई। बालिका की बाल आँखें फिर लग गईं और कुछ ही क्षणों में वह गाढ़ निद्रा में निमग्न हो गई।

प्रतिभा की विचारधारा फिर प्रवाहित हुई। वह अपने ही सम्मुख बड़ी भारी अपराधिनी मालूम हुई और महेश के पास क्षमा माँगने के लिये जाने लगी। कभी सोचती कि मालती से भी क्षमा माँग लूं; किन्तु फिर सोचती—यह फ़िज़ूल में बात बढ़ाना होगा अन्त में उसने निश्चय किया कि पहले महेश से क्षमा माँगें और फिर यदि उनकी सलाह हो तो मालती से भी क्षमा माँग लें। प्रतिभा इतनी उत्तेजित हो गई कि रात को उसी समय कनक को सोती हुई छोड़कर महेश से माफ़ी माँगने के लिये चल दी। अद्भुत भावों ने उसके हृदय में ऐसी हलचल मचा दी कि उसे समय का ज़रा भी ध्यान न रहा। उसका ध्यान उधर गया ही नहीं कि यह सोने का समय है और ऐसे समय में महेश को जगाना उचित न होगा। वह जल्दी-जल्दी पग उठाती हुई महेश के कमरे की तरफ़

चली और रास्ते भर सोचती रही कि किस प्रकार बात आरम्भ करेगी। किन्तु जब महेश के कमरे के पास पहुँची तब उसे होश आया और यह जानने के लिये कि महेश सोते हैं या जागते, वह बन्द दरवाज़े की दराज़ों से झाँकने लगी। किन्तु अन्दर का दृश्य देखते ही सन्न हो गयी। लैम्प की बत्ती धीमी-धीमी बल रही थी और महेश बिस्तर में पड़े-पड़े अनिमेष नेत्रों से मालती का मुँह देख रहे थे। मालती भी दवा का प्याला लिये हुए पास ही खड़ी थी। महेश कहने लगे—

मालती, तुम इतनी सुन्दर क्यों हो? और यदि सुन्दर भी हुई तो यह मलिन वेष क्यों धारण करना पड़ा। क्या इस मलिन-वेष को नहीं उतारोगी? तुम्हारी बहिन अगर तुमसे आधी भी सुन्दर हो……। अपनी हँसी को दाबती हुई मालती बीच ही में बोली—फिर वही बात! रोज़-रोज़ एक ही बात कहाँ तक सुनूँ। दवा नहीं पीते—ख़राब हो जायगी।

बाहर दरवाज़े के पास खड़ी हुई प्रतिभा ने सब देखा, सब सुना और चुपचाप लौटने लगी। किन्तु उत्कण्ठा ने लौटने न दिया। वह फिर लौटकर झाँकने लगी। मालती उस समय कह रही थी—

आपको मेरे सिर की क़सम। जल्दी दवा पीजिये, नहीं तो ख़राब हो जायगी।

महेश ने जल्दी से आधा सिर उठाया और दवा हाथ में लेकर बोले—लाओ, दवा पी लूँ, अगर तुम अपनी क़सम न देती तो कभी दवा न पीता। दवा पीते-पीते थक गया हूँ।

प्रतिभा और अधिक न सुन सकी। यदि और कभी यह बात हुई होती तो शायद इस पर ध्यान भी नहीं जाता, किन्तु इस समय तो एक-एक बात उसके लिये बहुत गम्भीर मालूम होती

थी। उसे एक-एक दिन की बात याद आने लगी, जब उसको देखते ही महेशचन्द्र ने मुँह फेर लिया था और लाखों क़सम देने पर भी दवा नहीं पी थी। प्रतिभा को मालूम होने लगा, मानो उसको धोखा देने के ही लिये मालती ने गम्भीरता का और योगिनी का ढोंग किया था। वह चुपचाप लौट गई। कनक अब भी सो रही थी। प्रतिभा फूट-फूट कर रोने लगी। उसके मन में बार-बार ये भाव उठ रहे थे—

अभी तक तो सिर्फ़ सुनी हुई बात थी; किन्तु अब तो आँखों से देख लिया। यदि वह मालती के साथ ख़ुश होंगे, तो मैं अपना सब कुछ छोड़कर उनका और मालती का साथ बनाये रखने की कोशिश करूँगी। यदि वह एक बार भी मेरी तरफ़ उतनी स्नेहमयी दृष्टि से देखते तो मैं अपने को धन्य समझती। अब मैंने अपना कर्तव्य सोच लिया। बस वे अच्छे हो जायँ फिर देर न करूँगी। परमात्मन्! मेरी सहायता करना। मेरे हृदय में बल दो, जिससे मेरा चित्त डाँवाडोल न हो और मैं अपना कर्तव्य पालन कर सकूँ।

प्रतिभा के आँसू दुगुने वेग से बहने लगे। इतने में मुर्ग़ें ने बाँग दी—"कुकड़ूँ कूँ" और चिड़ियाँ चहचहा कर नये दिन का स्वागत करने लगीं।

५

"बहिन, तुम इतनी उदास क्यों हो? क्या तबियत ठीक नहीं है?"

"नहीं तो। मैं तो यों ही ज़रा चुप थी।" कहकर प्रतिभा ने मालती को बहलाने के लिये हँसने की चेष्टा की। उसकी चेष्टा देखकर मालती समझ गई कि इन्हें कोई बड़ी भारी चिन्ता सता रही है, जिसे यह बताना नहीं चाहती। किन्तु वह यह न समझ सकी कि उसकी चिन्ता क्या है। वह बार-बार सोचने लगी; किन्तु कुछ समझ में नहीं आता था। प्रतिभा को मालती का सूखा मुँह देखकर दया आ गई। वह स्नेह-सिञ्चित स्वर में बोली—

मालती, तुम क्या सोच रही हो? मालती मानो सोते से जगी। वह उस समय सोच रही थी—"कहीं इनको कुछ मालूम तो नहीं हो गया? मेरे ऊपर शक तो नहीं हुआ।" आख़िर चोर का मन ही कितना। मालती बात बदलने की इच्छा से बोली—"बहिन, अब मेरा यहाँ कोई काम नहीं रहा। मुझे घर भेज दो तो अच्छा हो।"

प्रतिभा यह सुनकर मन ही मन ख़ुश हुई; क्योंकि सिर की बला अपने आप ही टलनेवाली थी। वह कुछ ऊपरी शिष्टाचार दिखाकर "अच्छी बात है" कहने ही वाली थी कि बीच में महेशचन्द्र की आवाज़ सुनकर चौंक पड़ी। महेश की अब तबियत ठीक हो गई थी। ताक़त अभी तक पूरी नहीं आई थी। बाहर घूमकर आ रहे थे। घर में पैर रखते ही उन्हें मालती के शब्द सुनाई पड़े, जिनको सुनकर वे अपना मन न रोक सके और जल्दी से बीच ही में बोल पड़े—तो जल्दी काहे की है? यह क्या बन है? यह भी तो घर ही है।

महेशचन्द्र को सामने देखकर मालती कुछ सकपका गई और बात समाप्त करने की इच्छा से बोली—मैं कब कहती हूँ कि यह घर नहीं वन है।

प्रतिभा को उस समय महेश और मालती का बोलना बहुत बुरा लगा। वह खून का घूँट पीने लगी। उस रातवाला सारा दृश्य उसकी आँखों के सामने घूमने लगा। जिस बहिन के ऊपर अभी एक क्षण पहले दया आ रही थी उसी बहिन से उसे अब चिढ़ आने लगी। वह कुछ चिढ़े हुए स्वर में महेश से बोली—तुम क्यों बीच में बोलते हो?

महेश ने देखा, प्रतिभा का मुँह गुस्से से तमतमा रहा है। भौंहें कुछ चढ़ गई हैं। महेश ने घृणा से मुँह फेरते हुए कहा—तो इतनी गरम क्यों हो रही हो? मैंने कौन से लट्ठ मार दिये?

प्रतिभा ने महेश की भ्रू-भङ्गी देखी। उसे अपने ही ऊपर झुँझलाहट आने लगी। वह अपने मन में अपने को धिक्कारने लगी—"मैं कितने ओछे दिल की हूँ। ज़रा सी बात भी पेट में न रख सकी"। महेश को देखकर मालती तो चुपचाप खिसक गई थी। अब महेश भी गुस्से में भुनते हुए चले गये। अकेली प्रतिभा वहाँ बैठी बैठी सोचने लगी—

जो घर अपना है, जिस घर की मैं गृहस्वामिनी हूँ, उसमें यह कुत्तों की फटकार नहीं सही जाती और वह फटकार भी किस के पीछे? जब अपना कसूर नहीं, दूसरों के पीछे मुझ से बात करते समय घृणा से कैसा मुँह फेर लिया था! बात क्या थी? कुछ नहीं। माना, मैं कुरूपा हूँ, तो क्या इसीसे घृणा की पात्री हो गई? क्या रूप ही सब कुछ है? मालूम नहीं, पिता जी ने सब बातें पहले ही क्यों न देख ली थीं। हाँ, मालती रूपवती है। मुझ से होशियार है। किन्तु क्या इसी के लिये मैं त्याज्य हूँ? इसमें मेरा क्या कसूर?

परमात्मा, यदि तेरी ऐसी ही इच्छा है तो यही करूँगी। अपने हृदय पर पत्थर रखकर उनका और मालती का साथ स्थिर करूँगी। अब देर करने की ज़रूरत नहीं है। अब तो वह अच्छे हो गये हैं। ईश्वर ने आज मुझे इस बहाने इसी का आदेश दिया है........।

प्रतिभा ने एक लम्बी साँस ली। मानो अब उसके हृदय से बोझ उतर गया हो। एकाएक उसे अपने निश्चय की अस्थिरता का ध्यान हुआ। उसको याद आ गया कि मालती विधवा है। फिर भला उसका और महेश का साथ कैसे स्थिर होगा। उन दिनों पुनर्विवाह की प्रथा कुछ कुछ प्रचलित तो हो गयी थी; किन्तु उससे क्या होता। प्रतिभा के होते महेश के साथ मालती का पुनर्विवाह किस प्रकार हो सकता था और वह भी उसे देख कैसे सकती थी। मानव-प्रकृति से कहाँ तक दूर रह सकती थी। प्रतिभा ने सोचा, आत्महत्या ही एक मात्र उपाय रह गया है। तत्क्षण कनक के ध्यान ने आकर उसे विचलित कर दिया। उसने निश्चय कर लिया कि जो हो, अब कनक को लेकर घर से निकल जाना ही ठीक होगा। जब घर में वह नहीं रहेगी तब थोड़े दिन उसको ढूँढ़ने का व्यर्थ प्रयत्न करके महेश उसे मर गई समझेंगे और फिर बहुत सम्भव है कि मालती के साथ विवाह कर लें।

प्रतिभा का हृदय कुछ शान्त हुआ और उसे एक नई स्फूर्ति मालूम होने लगी। और प्रसन्नता की एक हलकी आभा से उसका मुँह चमक उठा। कनक उसी समय खेलती खेलती धूल में भरी हुई आगई और प्रतिभा की गोद में बैठ गई। प्रतिभा ने उसे बहुत प्यार से गोदी में बैठाला। फिर कनक को बहलाकर घर का काम करने चल दी। रास्ते में महेश का कमरा पड़ता था। प्रतिभा ने

बहुत चाहा कि उधर न देखे; किन्तु दृष्टि न मालूम क्यों उधर अपने आप ही चली गई और दरवाज़ा बन्द देखकर लौट आई। किन्तु कान नहीं माने। जाते जाते उसने सुना—

आप क्यों बात बढ़ा रहे हैं? मुझे जाने दीजिये।

फिर महेश की आवाज़ आई—नहीं, तुम्हें नहीं जाने दूँगा। तुम डरती क्यों हो? प्रतिभा तुम्हारा कर ही क्या सकती है?

मालती और महेश की बातें सुनकर प्रतिभा ठिठक गई। पैरों ने आगे चलने से इन्कार कर दिया। लाचार होकर प्रतिभा वहीं खड़ी हो गई और सुनने लगी।

कमरे में थोड़ी देर के लिए सन्नाटा छा गया। फिर महेश की आवाज़ सुनाई पड़ी—

मालूम नहीं, वह इतनी सिर-चढ़ी क्यों हो गई। मैं तो कभी उससे सीधे बात भी नहीं करता।

मालती—नहीं। मेरे पीछे उनसे बिगाड़ मत कीजिये। मैं आपकी कोई नहीं हूँ।

महेश ने कुछ ताने भरे स्वर में कहा—हाँ, हाँ, यदि उनसे बिगाड़ करूँगा तो भला मेरी हारी-बीमारी में कौन काम आयेगा—रात-दिन कौन जागकर एक करेगा। महेश ने फिर स्वर बदलकर कहा—तुम घबड़ाती क्यों हो? मेरा और प्रतिभा का मेल ही कब था जो अब तुम्हारे पीछे उनसे बिगाड़ करूँ?

प्रतिभा और न सुन सकी। जिस मालती को वह सरला, स्नेहमयी बहिन समझती थी वही मालती मिलकर गला काटेगी, ऐसी उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी। अब वह समझ गई कि क्यों मालती को उसके आराम का विशेष ध्यान रहता था और वह क्यों महेश की बीमारी का सारा काम अपने सिर पर लेकर

प्रतिभा को आराम देना चाहती थी। कर्तव्य पर चलने में जो थोड़ी बहुत हिचकिचाहट थी वह भी अब दूर हो गई। किन्तु आज अन्तिम बार अपने हाथों से महेश को भोजन कराये बिना, उनका काम किये बिना, जाने को मन नहीं चाहा। प्रतिभा घर का काम करने चल दी। बार बार आँखों में आँसू भर आते थे; किन्तु प्रतिभा उन्हें जल्दी से पोंछ डालती थी। चन्द्रदेव प्रतिभा के दुःख में सहानुभूति करने के लिये बादलों की ओट से झाँकने लगे। सुखद शीतल किरणें प्रतिभा के आँसू पोछने लगीं। कनक सो गई थी। प्रतिभा खाना बनाकर महेश और मालती का रास्ता देख रही थी; किन्तु वह अन्तिम आशा भी पूरी न हो पाई। रात के नौ बज गये; किन्तु महेश और मालती में से कोई न दिखाई पड़ा। लाचार होकर प्रतिभा ने भोजन उठाकर रख दिया और भूखी ही अपने कमरे में चली गई। कनक अकेली सो रही थी। प्रतिभा पास बैठकर अपने भाग्य को रोने लगी—

हाय! इस नन्हीं सी लड़की ने क्या बिगाड़ा जो इससे भी कोई नहीं बोलता। बाप होकर बेटी की तरफ देखते भी नहीं। प्रतिभा का दम सा घुटने लगा। वह पट्टी पर सिर रखकर बैठ गई। मालूम नहीं, वह कितनी देर तक इसी अर्द्धचेतनावस्था में बैठी रही। किसी ने आकर पीछे से कन्धे पर हाथ रख दिया। प्रतिभा ने चौंक कर देखा, सामने मालती खड़ी है। मालती को देखते ही प्रतिभा ने अपना सिर फिर नीचे झुका लिया। मालती ने पूछा—खाना नहीं खाया?

मालती का प्रश्न सुनकर प्रतिभा जल गई। उसके मन में हुआ कि कह दें "तुम से मतलब"? किन्तु कुछ सोचकर वह चुप हो गई और केवल सिर हिलाकर उत्तर दिया—नहीं।

मालती समझ गई कि प्रतिभा बोलना नहीं चाहती। किन्तु

फिर भी वह बोली—अच्छा, चलो ज़रा सा खा लो।

प्रतिभा का मौनव्रत टूटा। वह ज़रा दृढ़ता से बोली—नहीं, मुझे भूख नहीं है। जाओ, तुम लोग खा लो।

"लोग" शब्द सुनकर मालती चौंक पड़ी। 'तुम लोग' से प्रतिभा का क्या मतलब था, यह समझने में मालती को कुछ देर न लगी। किन्तु फिर भी जान-बूझकर उसने बात टाल दी और जिधर से आई थी उधर ही उल्टे पाँव लौट गई। प्रतिभा के मन में आया कि मालती से महेश को भेजने के लिये कह दें। किन्तु उसके आत्मगौरव ने उसका मुँह बन्द कर दिया। उसने मन ही मन कहा—"मैं उनसे मिलकर उन्हें और दुख न दूंगी।" प्रतिभा कुछ निश्चय न कर सकी कि क्या करना चाहिये। इसी प्रकार धीरे धीरे ग्यारह बज गये। निशानाथ अपने पूर्ण प्रकाश के साथ गगनतल में मानवचरित्र देख-देखकर खिलखिला रहे थे। समस्त प्रकृति मुस्करा रही थी। प्रतिभा के एक मन ने कहा—अब इस घर में नहीं रहना चाहिये।

तत्क्षण दूसरा मन बोला—वाह! जिस घर में इतने दिनों से रहती आयी हो उसे ज़रा सी बात के लिये छोड़ दोगी!

पहले मन ने फिर कहा—व्यर्थ का बहाना क्यों बनाती हो? साफ़ साफ़ क्यों नहीं कहती कि महेश को छोड़ना नहीं चाहती। उनको देखना चाहती हो।

प्रतिभा के दोनों मनों में अब नये विषय पर वादविवाद छिड़ गया। एक कहता था कि जाने से पहले एक बार महेश से मिल लेना चाहिये। दूसरा मन कहता, नहीं, मिलने की क्या ज़रूरत? अपने धर्म पर, कर्तव्य पर, डटी रहो। तुम्हारा धर्म है महेश को सुखी रखना। जब तुम्हें मालूम है कि तुम्हें देखकर महेश दुःखी होंगे तो फिर जान-बूझकर उन्हें दुःखी क्यों कर रही हो?

प्रतिभा इसी झगड़े में फँस गई और कुछ निश्चय न कर सकी कि क्या करना चाहिये। एकाएक एक बजे के घंटे ने प्रतिभा को चेतावनी दी। प्रतिभा ने जल्दी से कुछ दो-चार कपड़े बाँधे, कुछ खाने का सामान ले लिया; क्योंकि कनक साथ थी, और कुछ थोड़े से रुपये रखकर एक पत्र लिखने लगी—

"मालूम नहीं, मैंने कौन सा अपराध किया जो आप मुझ से इतने नाराज़ हैं। मैं सुन्दर नहीं हूँ; किन्तु इसमें मेरा क्या दोष? भाग्य का लिखा कौन मिटा सकता है? आप मुझे देखकर दुःखी होते हैं—अब मैं भी वही उपाय करूँगी जिससे आप मुझे न देख सकें। मुझे दुख केवल इतना रहेगा कि अन्तिम बार भी आपको न देख सकी। मैं शाम से आपकी रास्ता देख रही थी; किन्तु आप दिखाई न पड़े। अन्यथा मैं आपके उन्हीं चरणों को, जो घृणा से मुझे ठुकराते हैं, पकड़कर अपने सारे अपराधों की क्षमा माँगती। अच्छा, अब माँगती हूँ, अवश्य क्षमा करियेगा। मैं जहाँ भी कहीं होऊँगी, आप की भलाई सोचूँगी। मेरे कारण आपके नाम में कोई कलंक नहीं लगेगा, इतना आप निश्चय जानिये। ईश्वर आप को और मालती को सुखी रक्खे।"

"प्रतिभा"

प्रतिभा ने जल्दी से काग़ज़ मोड़कर अपने तकिये के नीचे रक्खा और चलने को तैयार हो गई। किन्तु मन न माना। पैर अपने आप ही महेश के कमरे की तरफ़ बढ़ गये। प्रतिभा ने जल्दी से ख़त उठा लिया और महेश के कमरे की तरफ़ चल दी। महेश के कमरे का दरवाज़ा खुला देख प्रतिभा ने धड़कते हुए हृदय से अन्दर झाँका। दुग्ध-समान स्वच्छ सुकोमल शय्या पर महेश अचेत पड़े सो रहे थे। वही गुलाब के फूल के समान खिला हुआ मुँह, वही बड़ी बड़ी आँखें, जिन्हें प्रतिभा रोज़ देखती

थी, अब कभी देखने को न मिलेगी। प्रतिभा अब अपने जन्म भर के लिये उस सुपरिचित मुँह को देखने लगी। अब इस जीवन में वह कभी देखने को न मिलेगा। प्रतिभा अपना सुख-दुःख सब भूलकर एकटक देखने लगी। उसके हृदय में भाँति भाँति के भाव उठ रहे थे—

मैं व्यर्थ ही इन्हें दोष देती हूँ। इतना सुन्दर मुँह—ऐसा चौड़ा ललाट, तेज से चमकती हुई ऐसी आँखें—एक एक लक्षण महाराजाओं के समान हैं। इनको ऐसी ही सुन्दर, ऐसे ही लक्षणों-वाली, महारानी के ही समान स्त्री चाहिये थी। मैं बदसूरत बीच में न जाने कहाँ से कूद पड़ी। फिर यदि मालती के रूप पर इनका मन फिसल गया तो इनका क्या दोष?

प्रतिभा का हृदय महेश के लिये भक्ति से भर गया। उसने अपना सिर महेश के पैरों पर रख दिया। किन्तु उसी समय महेश को करवट लेते देख उसने जल्दी से अपना सिर हटा लिया। अब उसको होश आया कि वह वहाँ क्यों आई थी। वह कमरे से बाहर जाने के लिये उद्यत हो गई। हठात् उसकी दृष्टि सामने ही लटकती हुई महेश की तसवीर पर गई। प्रतिभा ने बड़े आदर से तसवीर उतार ली। फिर अन्तिम बार प्रणाम करने के लिये महेश के पैरों पर सिर रक्खा। उसकी आँखों से आँसुओं की दो गरम गरम बूँदें महेश के पैरों पर गिर पड़ीं। प्रतिभा जल्दी से आँखें पोंछती हुई कमरे के बाहर हो गई। प्रतिभा का एक एक पैर मन मन भर का हो गया। कोई अज्ञात शक्ति बार बार उसकी दृष्टि खींचकर महेश के कमरे की तरफ़ ले जाती थी। बड़ी कठिनता से वह अपने कमरे में पहुँची। घर छोड़कर जा ही रही थी कि उसे ध्यान आया, कहीं सुबह महेश अपनी तसवीर न ढूँढ़ें। प्रतिभा ने एक काग़ज़ पर लिखा—मैं

आपके कमरे से आपकी तसवीर बिना पूछे ले आई हूँ। क्षमा कीजियेगा।

'प्रतिभा'

प्रतिभा ने पर्चा अपनी मेज़ पर दावात के नीचे रख दिया। फिर उसने धीरे से कनक को जगाया। कनक कुछ रोने सी लगी; किन्तु प्रतिभा ने उसे जल्दी से बहलाया और सामान की गठरी लेकर कमरे के बाहर हो गयी। घर के दरवाज़े तक पहुँचकर उसका मन फिर डाँवाडोल होने लगा। उसने एक बार घूमकर महेश के कमरे की तरफ़ देखा। महेश इस समय भी अचेत पड़े सो रहे थे। प्रतिभा ने दूर से ही मन ही मन महेश को फिर प्रणाम किया और मन दृढ़ करके आगे को पैर उठाया। दीवाल पर टँगी हुई घड़ी ने दो का घण्टा बजाया—मानो प्रतिभा से कह रही थी, क्या करोगी जाकर? यहीं रहो। यह तुम्हारा घर है। किन्तु प्रतिभा ने घड़ी के कहने पर कुछ ध्यान नहीं दिया। किसी अज्ञात शक्ति ने उसके हाथ से कुण्डी खुलवा दी और एक क्षण में माँ और पुत्री घर से बाहर हो गईं। सड़क पर खड़ी होकर प्रतिभा ने एक बार फिर घर की तरफ़ देखा और फिर डबडबाई हुई आँखें पोंछती हुई, कनक का हाथ पकड़कर, जल्दी जल्दी एक तरफ़ चलने लगी। कनक ने अर्द्धनिद्रित स्वर में पूछा—

माँ, कहाँ चलोगी?

प्रतिभा ने जवाब दिया—बेटी, जहाँ भाग्य ले जाय!

प्रतिभा कनक के साथ चलकर उस गाढ़ अन्धकार में लीन हो गई।

मुर्गे ने अपनी बाँग देकर कहा—

ठहरो, मैं तुम्हारी मदद के लिये तुम्हारे साथ आता हूँ।

कुत्ते ने गुर्राकर कहा—ज़रा रुको। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। आदमी चाहे जैसे हो गये हों; किन्तु अभी हम लोग ऐसे नहीं हुए कि एक अबला स्त्री का पालन न कर सकें—उसे ऐसी अँधेरी रात में अकेली जाने दें।

मालूम नहीं, प्रतिभा ने अपने इन नये मित्रों की बातें सुनी या नहीं; किन्तु उसके पैरों की ध्वनि बराबर आती रही। जिससे मालूम हुआ कि वह रुकी नहीं और एक तरफ़ कदम उठाये बराबर चलती रही।

६

लाल सुनहले रंग-विरंगे कपड़े पहने प्रातःकाल धीरे धीरे इठलाता हुआ चिड़ियों को जगा रहा था। प्रातःकाल की बाल्य सखी शीतल मन्द समीर आकर अपने सखा के साथ खेलने लगी। दोनों के खेल ने छत के ऊपर ज़मीन पर सोती हुई मालती को जगा दिया। मालती आँखें मलती हुई उठ बैठी और अपने को ऊपर ज़मीन पर पड़ी हुई देखकर वह कुछ समझ न सकी कि वहाँ कब और किस प्रकार आ गयी। थोड़ी देर बाद उसे अपने आप ही धीरे धीरे याद आने लगा कि वह रात को महेश के कमरे में बैठी हुई अपने जाने के विषय में बातें कर रही थी। किन्तु महेश उसकी कुछ सुनते ही नहीं थे। मालती भी आधे ही मन से घर जाने को कहती थी; क्योंकि महेश को छोड़कर जाने के लिये उसका ज़रा भी मन नहीं होता था और दूसरी तरफ़ उसे यह भी पसन्द नहीं था कि

उसके पीछे महेश में और उसकी बहिन में लड़ाई हो। मालती ने सब झगड़ा शान्त करने का एक बार प्रयत्न किया भी और प्रतिभा को खाने के लिये बुलाने भी गई। किन्तु इसका प्रतिभा के ऊपर उल्टा असर हुआ। प्रतिभा के नीरस व्यवहार ने उसके हृदय को बहुत चोट पहुँचाई। वह चुपचाप ऊपर चली गई और रोने लगी। अपने जीवन में पहली बार मालती को अपने वैधव्य पर दुख हुआ। रह-रहकर उसे अपने माँ-बाप पर गुस्सा आता और वह मन ही मन कहती—उन्होंने मेरा बचपन में ही क्यों ब्याह कर दिया! कुछ दिन तो मैं विधवा के नाम से बच जाती। यदि विधवा न होती तो आज मैं क्यों यहाँ इतने दिनों पड़ी रहती और कोई मेरी ख़बर भी न लेता। हाय! तब यह सब क्यों होता?

मालती की धोती रोते रोते भीग गई और न मालूम किस समय रोते ही रोते उसकी आँख लग गई अब उसको सारी बातें स्वप्न के समान याद आने लगीं और वह आँखें मलती हुई नीचे उतरी। सामने प्रतिभा के कमरे में नज़र गई। उसने दूर से ही देखा कि कमरा खाली पड़ा है। वह चुपचाप हाथ-मुँह धोने चली गई। इतने में सुखिया नौकरानी ने आकर पूछा—सदर दरवाज़ा क्या आपने खोला है? मालती के मना करने पर वह प्रतिभा से पूछने गई कि मालती और प्रतिभा ही सुबह तड़के उठा करती थीं। महेश तो इस समय भी सो रहे थे। सुखिया ने ऊपर-नीचे सब घर ढूँढ़ डाला; किन्तु जब प्रतिभा होती तब ही तो मिलती। उसने आकर फिर मालती से कहा—मालकिन तो कहीं मिलती ही नहीं। मालूम होता है, दरवाज़े रातभर खुले रहे। मालती ने अधपुछे ही हाथ छोड़ दिये और सीधो प्रतिभा के कमरे में गई। प्रतिभा को कमरे में न पाकर उसने भी घर भर छान डाला; किन्तु

सब व्यर्थ हुआ। मालती ने घबड़ाकर महेश को जगाया।

महेश उस समय स्वप्न देख रहे थे। निर्मल सलिला श्री-भागीरथी की लहरें सायंकालीन वायु के मन्द झकोरों के साथ नाच रही हैं और महेश मालती के साथ एक नाव में बैठे हुए खे रहे हैं। मालती अपने सुरीले कण्ठ से सुमधुर स्वर में गा रही है! कितना आनन्द है—कितना सुख है! महेश को उस सुख के आगे स्वर्ग का भी सुख फीका लगने लगा। नाव धीरे धीरे चली जा रही थी और मालती के मधुर कण्ठ से निकल कर सङ्गीतलहरी पानी की छप-छप में मिलकर महेश के कानों में सुधा की अपूर्व वर्षा कर रही थी। बादल और हवा भी मालती के सरस कण्ठ से आकर्षित होकर आ गये। मालती और भी ज़ोर से गाने लगी, जिसे सुनते ही महेश अपने तन-बदन की सुध भूल गये। भागीरथी की लहरों ने भी नाचना छोड़कर सिर उठाया और नाव में झाँकने लगीं। मालती के गीत से आकर्षित होकर एक के बाद दूसरी लहर धीरे धीरे नाव में घुसी। एक लहर ने आवेग से मालती के कमल-चरणों पर अपना सिर रख दिया; किन्तु उसके ठण्ढे स्पर्श से मालती चौंक पड़ी और गाना-वाना सब भूल गई। नाव में बहुत पानी भर गया था, जिससे वह डगमगाने लगी थी। लहरें नाव में नाचने लगीं। नाव के दो टुकड़े हो गये और मालती की तरफ की नाव नाचती नाचती डूबने लगी; किन्तु महेश की तरफ की नाव अब भी वैसी ही बही चली जाती थी। महेश के देखते देखते मालती गंगाजी की अनन्त गोद में जाकर अदृश्य हो गई। महेश सोते ही सोते चीख पड़े—"मालती! मालती!" ठीक उसी समय मालती ने आकर महेश को जगाया—जल्दी उठिये! बहिनजी का कहीं पता नहीं लगता। महेश ने आँखें खोलीं और

देखा कि मालती डूबी नहीं है, उनके पास ही खड़ी है। मालूम नहीं, उन्होंने मालती की बात सुनी या नहीं; क्योंकि उन्होंने उठकर मालती का हाथ पकड़ लिया और बड़ा उद्विग्नता से पूछा—मालती, यह सब क्या था—मैं अब स्वप्न में देख रहा हूँ या तब देख रहा था?

मालती ने महेश के प्रश्न पर कुछ ध्यान नहीं दिया। वह बोली—जल्दी उठिये। देखिये बहिनजी कहाँ हैं।

महेश फिर खाट पर लेट गये और अर्द्धनिद्रित स्वर में बड़ी अनिच्छा से बोले—

होगी यहीं कहीं। मैं क्या जानूँ?

मालती ने देखा, दरवाज़े पर से किसी की परछाँही निकली। वह ज़रा तेज़ स्वर में बोली—यहीं कहीं नहीं—उनका घर भर में पता नहीं लगता। जल्दी उठिये, नहीं तो अब कलंक का टीका आप के सिर लगेगा। मालती का तेज़ स्वर सुनकर महेश की नींद भाग गई और मालती के साथ जाकर प्रतिभा के कमरे में मेज़ के पास कुरसी पर बैठ गये। जम्हाई लेते लेते उनकी दृष्टि मेज़ पर दावात के नीचे दबे हुए प्रतिभावाले पर्चे पर गई। महेश ने पर्चा उठा लिया और पढ़ने लगे। किन्तु उसका आशय कुछ समझ न सके। मालती उस समय प्रतिभा को ढूँढ़ने के लिये फिर सारा घर छान रही थी। लाचार होकर महेश पर्चा लिये ही लिये अपने कमरे में चले गये और बिस्तर पर लेट गये। सिर के नीचे लगाने के लिये तकिया दुहरी कर रहे थे कि प्रतिभा का दूसरा पर्चा भी निकल पड़ा। महेश उसको बार-बार पढ़ने लगे; किन्तु अक्ल कुछ काम ही नहीं देती थी। इतने में मालती ने फिर कमरे में प्रवेश किया और कहने लगी—घर में तो वह कहीं नहीं मिली। बताइये, अब कहाँ ढूँढ़ूँ? महेश ने बिना कुछ

कहते हुये दोनों पत्र मालती के आगे बढ़ा दिये, जिनको पढ़ते ही मालती सन्न हो गई।

७

"माँ, माँ, तुम दिन भर कहाँ रहती हो ? अब मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी। खूब कस के पकड़ लूँगी।"

"नहीं बेटी, पकड़ने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। मैं तो बीच में एकाध बार आ जाती हूँ। अब कहीं नहीं जाऊँगी।" कहकर प्रतिभा ने अपना साफा उतारा और कनक का हाथ पकड़ कर घर के अन्दर चली गयी।

× × ×

पाठकगण, 'साफा' सुनकर चौंके क्यों ? अब तो प्रतिभा प्रतिभा नहीं; किन्तु प्रमोद बाबू हो गई है—फिर साफा न बाँधे तो क्या करे ? अब तो उसे पूरी मर्दानी पोशाक पहननी पड़ती है। अच्छा, अब और अधिक न सोचिये। बात असल में यह है कि ज़माने ने प्रतिभा को प्रमोद बाबू बना दिया। प्रतिभा घर से निकल तो आई थी; किन्तु अब जाती कहाँ ? भारतीय ललनाओं को पग पग पर आपत्ति घेरे रहती है। कहीं धर्म-संकट है, तो कहीं समाज-संकट। प्रतिभा जानती थी कि स्त्री-वेष में कनक का पालन करना तो दूर, वह स्वयं अपनी भी रक्षा नहीं कर सकेगी और यदि आत्महत्या करे तो बालिका कनक की खराबी होगी। यदि प्रतिभा जीवित रहती है तो गली-गली में चक्कर लगानेवालों की गृद्ध-दृष्टि से वह न बच सकेगी। अतएव अपना धर्म सुरक्षित रखने

के लिये, अपनी एकमात्र कन्या कनक का पालन करने के लिये, उसने भेष बदलना ही उचित समझा और स्त्री-वेष को छोड़ कर पुरुष-वेष धारण कर लिया। उसने अपनी चूड़ियाँ और बिछुए तक निकाल डाले, मर्दानी धोती पहनी और एक छोटे से दुपट्टे का साफा बाँधकर संसारक्षेत्र में कूदने के लिये तैयार हो गयी। कनक को उसने ख़ूब समझा दिया कि वह अब उसे 'माँ' नहीं, किन्तु 'पिताजी' कहा करे। इस प्रकार तैयार होकर प्रतिभा निर्भयतापूर्वक चलने लगी। चलती चलती वह तीसरे दिन रत्नपुर गाँव में पहुँची। वहाँ पहुँचने पर उसे मालूम हुआ कि वहाँ के ज़मीन्दार बाबू उमाशङ्कर को एक नौकर की ज़रूरत है। प्रतिभा ने सोचा कि और जगह टक्कर खाने से पहले इन ज़मीन्दार साहब के यहाँ ही अपने भाग्य की आजमाइश करें। भाग्य अच्छे थे जो जाते ही नौकरी मिल गयी। प्रतिभा और कनक चलती चलती थक गई थीं। कनक के भोले मुरझाये मुँह पर ज़मीन्दार साहब को दया आ गई और उन्होंने तुरन्त पच्चीस रुपये महीने पर प्रतिभा को नौकरी दे दी। प्रतिभा का एक छोटा सा घर भी रहने को मिला, जिसमें वह अपनी पुत्री के साथ आनन्द से रहने लगी और थोड़े से थोड़ा ख़र्च करके बाकी रुपया जोड़ने लगी।

× × ×

प्रतिभा कनक को लेकर अन्दर पहुँची और बाहर के कपड़े उतारने के बाद रसोई की तैयारी करने लगी। कनक पास बैठ कर बोली—

'माँ, तुम मुझे लड़का क्यों नहीं बना देती।' प्रतिभा कुछ हँसती हुई बोली—तुम्हें क्या धुन सवार हो गयी है कनक? अब तक लड़का बनने की रट नहीं गई। मैं तुम्हें कैसे लड़का

बना दूँ? कहीं यह भी हो सकता है? यह तो ईश्वर का काम है।

कनक—अच्छा तो फिर तुम कैसे बन गई?

प्रतिभा—भला यह तो बता, तू लड़का बनना क्यों चाहती है?

कनक को अपनी दादी का व्यवहार अभी तक भूला नहीं था। उसने बाल-स्वभाव से उत्तर दिया—लड़का बनना अच्छा होता है, तब दादी प्यार करती हैं और माँ पर भी नहीं खिझातीं।

प्रतिभा ने कुछ कहना चाहा; किन्तु होंठ खुलने से पहले ही उसकी आँखों में आँसू छलछला आये। बात बदलने की इच्छा से वह बोली—कनक, मैं तेरे लिये मिठाई रख गई थी। क्या तू ने खाई?

कनक अपना प्रश्न भूल गई और जल्दी से सिर हिलाती हुई बोली—हाँ, हाँ, खाई थी। ख़ूब मीठी थी। कनक की आँखें खुशी से चमक उठीं। प्रतिभा ने उसके बालोल्लास को देखा। आँखों से गरम गरम दो बूँदें टपक पड़ीं—हाय! कहाँ कनक मिठाई के भरे हुए दोनों को उठाकर फेंक देती थी और कहाँ आज यह दो जलेबियों पर इतनी खुश हो रही है! विचार उठते ही प्रतिभा के हृदय में जलन होने लगी।

किसी प्रकार भोजन तैयार करके प्रतिभा ने कनक को खिलाया और फिर थोड़ा सा अपने आप खाकर एक कमरे में लेट गई। कनक भी पास के ही कमरे में गुड़ियाँ खेलने लगी। इतने में किसी ने बाहर से आवाज़ दी—"कनक"! किन्तु गुड़ियों में मग्न होने के कारण कनक न सुन सकी। वह उस समय एक गुड़िया के साफ़ा बाँध रही थी और अपने आप ही कह रही थी—

गुड़िया, मैं तुम्हें अब गुड्डा बनाऊँगी। फिर तुम्हें पढ़ने को

मिलेगा, अच्छे अच्छे कपड़े मिलेंगे और खूब मिठाई मिलेगी। बालिका अभी अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाई थी कि किसी ने पीछे से आकर उसकी आँखें बन्द कर लीं। बालिका ने हाथ हटाते हुए कहा—मदन, मैं जान गई। मदन ने हँसते हुए आँखें खोल दीं और पूछा—किसे मिठाई खिला रही हो? कनक अपनी गुड़िया के साफ़ा बाँध चुकी थी। उसे बैठालते हुए उसने कहा—

इस गुड्डे को।

मदन—और मुझे?

कनक कुछ देर तक मदन का मुँह देखती रही। फिर बड़ी गम्भीरता से बोली—अच्छा, तुम्हें भी खिला दूँगी। कनक का उत्तर सुनकर मदन खुशी के मारे उछल पड़ा और बड़ी प्रसन्नता से कनक के साथ गुड़ियाँ खेलने लगा।

मदन प्रतिभा के मालिक बाबू उमाशङ्कर का लड़का है। इसके पहले उमाशङ्कर के कई बच्चे हुए थे; किन्तु सब अपनी बाललीला ही दिखाकर स्वर्ग सिधार गये। मदन से बड़ी सरला नाम की पहली पुत्री केवल बच गई थी। उसके बाद अब यह मदन बचा, जिसने अब धीरे धीरे अपना पैर बाल्यकाल से आगे बढ़ाया था। मदन कनक से केवल दो साल बड़ा था। अतएव लगभग समान आयु के होने के कारण दोनों में बहुत मेल होगया था। प्रतिभा को नौकरी करते अभी छै या सात महीने ही हुए होंगे; किन्तु इतने थोड़े समय में ही बाबू उमाशङ्कर को प्रतिभा के ऊपर बहुत विश्वास हो गया था। यह उसी विश्वास का प्रमाण था कि मदन प्रतिभा के यहाँ आ जाता और दिन भर खेलता रहता।

मदन ने वह गुड़िया उठायी, जिसको साफा बाँधकर अभी कनक ने बैठाला था, और उसका साफा उतार डाला। कनक

को यह बात बहुत बुरी लगी। उसने जल्दी से मदन के हाथ से गुड़िया छीन ली और तमककर बोली—यह क्या किया? मैंने बड़ी मुश्किल से अपनी गुड़िया को गुड्डा बनाया था।

कनक की बात सुनते ही मदन ठठाकर हँस पड़ा। उसकी हँसी ने कमरे में गूंजकर प्रतिभा की ऊँघती हुई आँखें खोल दीं। प्रतिभा ने सुना कि मदन हँसता ही हँसता कह रहा है—

आख़िर तुम गुड़िया को गुड्डा क्यों बनाना चाहती हो? कनक ने कुछ चिढ़कर कहा—मेरा मन।

मदन—वाह! तुम्हारा मन भी ख़ूब है! तुम्हारा वश चले तो तुम सब जानवरों को आदमी और सब आदमियों को चिड़ियाँ बना दो।

प्रतिभा ने दोनों की बातें सुनी। उसकी आँखों में आँसू आ गये और हठात् मुँह से निकल गया—मदन, तुम अभी क्या समझोगे कि कनक गुड़िया को गुड्डा क्यों बनाना चाहती है? उसके छोटे से दिल में उसकी दादी के व्यवहार से जो घाव हो गया है वह कैसे भरे? कनक को यह इच्छा, इच्छा नहीं है; किन्तु उसी घाव का दर्द है।

मालूम नहीं, यह शब्द मदन या कनक के कान में गये या नहीं; क्योंकि उस समय वे दोनों फिर अपने बचपन के खेलों में मग्न हो गये थे।

८

दिन के कोई दस बजे हैं। सब मनुष्य अपना अपना काम कर रहे हैं; किन्तु मधुपुर में दस-बारह मनुष्य, न मालूम क्यों, एक आम के पेड़ के नीचे बैठकर कुछ बातें कर रहे हैं। हमारी वह पूर्व-परिचिता महेश की नौकरानी सुखिया भी यहाँ बैठी हुई दिखाई देती है।

अपनी चिलम घसीटे को देते हुए बुद्धू बोला—हाँ भाई, तो क्या बात तय की? चिलम का एक दम लेकर घसीटे बोला—खूब सोच-समझ कर सब ठीक करना होगा। बड़े आदमियों का मामला है।

छज्जू ने भी घसीटे की हाँ में हाँ मिलाई। वृद्ध गोबरे अभी तक कुछ नहीं बोला था। चुपचाप बैठा हुआ सब की बातें सुन रहा था। अब को बार उसने भी मुँह खोला—"पहले सब बात तो बताओ फिर राय सोचो।" घसीटे ने सुखिया की तरफ़ देखा।

प्रतिभा के खो जाने पर जब मालती और महेश बातें कर रहे थे तब मालती ने दरवाज़े के पास किसी की परछाहीं देखी थी। वह परछाहीं सुखिया की ही थी। सुखिया ने उस समय जो कुछ देखा और सुना था, सब नमक-मिर्च लगाकर बयान करने लगी। उसने अनेक प्रमाण देकर सबको विश्वास दिलाया कि महेश ने विधवा मालती के पीछे अन्धेरी रात में प्रतिभा और कनक को घर से निकाल दिया। बुद्धू एकदम से बोल उठा—ज़मीन्दार हों, चाहे जो कोई हों, उनके पीछे क्या दुनिया से धर्म उठ जायगा? अब सोच-विचार काहे का? उनको तो फौरन ही जाति से बाहर निकाल देना चाहिये।

सुखिया ने और नमक-मिर्च छिड़क दिया—हाँ, देखो तो, अगर मालिक ने मालकिन को नहीं निकाला तो फिर उनको ढूँढ़ते क्यों नहीं ? उनके पास तो रुपयों की भी कुछ कमी नहीं है। वह मालकिन इतनी अच्छी थीं और ऐसी सीधी थीं कि कभी डाँटकर बात करना ही नहीं जानती थीं। ऐसी अच्छी थीं कि क्या बताऊँ। बिचारी ने कभी सुख नहीं जाना। जब सुख के दिन आये तब यह हालत हुई। बिचारी की आँखों से आँसू कभी सूख ही नहीं पाये।

सुखिया के इन शब्दों ने आग में घी का काम किया। वहाँ के सब लोग महेश को जाति से बाहर निकालने को व्याकुल हो उठे। सुखिया विजयोल्लास की हँसी हँसती हुई चल दी। जाते जाते उसने फिर कहा—

देखो, भूलना मत। एक बिचारी निरपराधिनी सताई गई है। धर्म और धन की लड़ाई है। अब देखना है कि किसकी जीत है।

सभा विसर्जित हो गई। सब लोग भाँति भाँति की टीका-टिप्पणी करते हुए अपने घर की ओर चले।

सुखिया मालती से चिढ़ती थी। मालूम नहीं क्यों, उसे मालती की सूरत से ही नफ़रत हो गई थी। प्रतिभा के निकल जाने का उसे जितना दुख नहीं था उतना दुख उसे मालती के सुख का हुआ। मालती अब बड़े सुख से और बड़ी शान से उसके ऊपर शासन करेगी, यह सुखिया सह न सकी। यदि वह चाहती तो नौकरी छोड़ देती; किन्तु ज़मीन्दारों से पाला पड़ा था। और नहीं तो कम से कम बेगारी करते करते उसकी नाक में दम हो जाता। इन्हीं सब आपत्तियों से बचने के लिये उसने उनकी जड़ ही खोद डालना निश्चय किया। यदि मालती महेश

के साथ नहीं रह सकेगी तो फिर यह सब क्यों होगा। अतएव किसी प्रकार मालती को ही अलग करना चाहिये। प्रतिभा का दुख दूर करने का केवल बहाना था।

सुखिया अपनी विजय पर प्रसन्न होती हुई घर पहुँची। मालती और महेश में उस समय बातें हो रही थीं। मालती कह रही थी—

कुछ बहिनजी का पता चला ?

महेश—मैंने उनको बहुत ढुँढ़वाया, कहीं तो पता चलता ! ऐसे कहीं खोये हुए लोग मिलते हैं ? चलो अच्छा हुआ। सिर की बला अपने आप ही निकल गई।

महेश का उत्तर सुनकर मालती के मुँह पर कुछ घबड़ाहट का चिन्ह झलकने लगा। वह जल्दी से बोली—नहीं, इतने निश्चिन्त मत हो। दुनिया क्या कहेगी ? हम दोनों की आफ़त आ जायगी। अभी उस दिन सुखिया कह रही थी कि गाँव भर में मेरी और आपकी बदनामी फैल रही है और बहुत सम्भव है, आप जाति से बाहर निकाल दिये जाँय।

महेश—बस ! इतनी सी बात के लिये इतनी चिन्ता ! जाति में रखकर ही कौन लड्डू दे रहा है जो जाति से बाहर होने पर उनके छिन जाने का डर है।

मालती—ज़रा सोचो ! जाति से बाहर, और किस लिये !

महेश चुप हो गये। थोड़ी देर तक सोचकर बोले—यह सब फिज़ूल की बातें हैं। देखूं, कौन क्या करता है। मान लो मैंने तुम्हारी बहिन को निकाल ही दिया, फिर किसी से मतलब ?

महेश के स्वभाव को मालती अभी तक नहीं पहचान पायी थी। वह गिड़गिड़ाकर कर बोली—

तुम्हारा तो कोई कुछ न करेगा, लेकिन मैं तो दीन-दुनियाँ

कहीं की न रहूँगी। मुझे मरने की भी जगह न मिलेगी।

महेश कुछ खीझकर बोले—तो मैं क्या करूं ?

महेश को झुँझलाते देख मालती डर गयी और सहमकर बोली—तुम गुस्सा क्यों होते हो? मेरी दशा तुम नहीं समझते। चाहे मैंने अपने पति का मुँह भी न देखा हो; किन्तु फिर भी मेरे मत्थे पर 'विधवा' की छाप लग गयी। मैं बाल-विधवा हूँ—जन्म-दुःखिनी हूँ। मेरा मुँह देखने से भी पाप होता है। ज़रा सुख की कुछ झलक मिली थी; किन्तु संसार उसे न सह सका। मैं उसकी भी कुछ परवाह नहीं करती—यदि तुम सुखी रहते। किन्तु देखती हूँ, मेरे पीछे तुम्हारा भी सुख नाश हो रहा है। मैं तुम्हें दुखी नहीं करूँगी। मैं सहर्ष उस झलक की तरफ़ से मुँह फेर लूँगी।

कहते कहते मालती की सुन्दर आँखें डबडबा आईं और सिर नीचे झुक गया। बात बदलने की इच्छा से महेश बोले—मालती, यहाँ तो मन नहीं लगता। लोगों ने तो बड़ा सिर उठाया है। उनके मारे नाक में दम हो गया। मेरी राय में, चलो कुछ दिनों के लिये किसी दूसरे शहर में चलें, तब शायद मन लग जाय। बोलो, मालती! क्या कहती हो?

मालती ने अपने झुके हुए सिर को ऊपर उठाया। सामने नज़र जाते ही उसने देखा कि सुखिया दरवाज़े के पास से हट रही है। सुखिया को देखकर मालती की अजब दशा हो गई। वह अपने दुःख की कथा, अपनी हीन दशा, महेश से कह रही थी, उसे शायद सुखिया ने सुन लिया। "एक तो सुखिया पहले ही मुझे कुछ नहीं समझती थी और अब तो न मालूम क्या करेगी"—विचार उठते ही मालती को सुखिया के ऊपर गुस्सा आने लगा कि वह इस तरह पीछे क्यों पड़ गई—छिपकर

बातें सुनने की उसकी आदत क्यों पड़ गई! उसके मन में आया कि सुखिया को खूब पिटवायें; किन्तु अपनी हार्दिक इच्छा पूरी करने का कोई उपाय न देखकर उसने सुखिया के सामने अपना मान रखना ही निश्चय किया। अतएव सुखिया को सुनाने के लिये वह महेश से ज़रा ऊँचे स्वर में बोली—

अगर मुझसे पूछते ही हो, तो जो मैं कहूँगी वह तुम्हें करना होगा।

महेश मालती के मुँह के चढ़ाव-उतार को बहुत ध्यान से देख रहे थे। बात समाप्त करने के लिये वे जल्दी से बोल पड़े—

"हाँ, करूंगा। तभी तो तुम से पूछ रहा हूँ"—मालूम नहीं, सुखिया के कानों में ये शब्द गये या नहीं; किन्तु वह चौंक अवश्य पड़ी। उसका यह चौंकना मालती की तीव्र दृष्टि से छिप न सका। मालती विजय-गर्व से सिर ऊँचा उठाकर बोली—

तो कल ही यह घर-द्वार छोड़ दो और चलो हम तुम दोनों संसार के इस अनन्त सागर में कूद पड़ें।

महेश कुछ सकुचाकर बोले—लेकिन कल तक ज़मीन्दारी का सब इन्तज़ाम कैसे कर सकूँगा?

मालती दृढ़ता से बोली—नहीं, अब इससे ज़्यादा एक क्षण भी यहाँ नहीं रहूँगी। तुमको सब इतने ही समय में ठीक करना पड़ेगा।

कहते कहते मालती दरवाज़ा खोलकर कमरे से बाहर हो गई। महेश देखते ही रह गये। उनके मुँह से अपने आप ही निकल गया—

मालती, मालती, तुम कौन हो? क्या कोई जादूगरनी हो जो तुमने अपने जादू के मायाजाल में मुझे फांस लिया है! कभी तुम सरलता की मूर्ति बन जाती हो—सीधी-साधी, भोली-भाली,

केवल एक बालिका मालूम पड़ती हो; और कभी तुम कठोरता की प्रतिमूर्ति, अति दृढ़स्वभाववाली एक अजीब स्त्री मालूम होती हो! तुम सचमुच में एक अद्भुत पहेली हो……। महेश के शब्द दीवालों से टकराकर फिर महेश के पास लौट आये— मानो कमरे की दीवालें कह रही थीं—महेश, तुम किस उधेड़-बुन में लगे हो? मालती को समझने की चाहे जन्म भर कोशिश करो; लेकिन वह तुम्हारे लिये सदा एक अद्भुत पहेली ही रहेगी।

९

"बोलो प्रमोद, चुप क्यों हो गये?"

"क्या बताऊँ बाबूजी, आपने जो प्रश्न पूछा उसका क्या उत्तर दूँ? क्या आप मुझ से झूठ बुलवाना चाहते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में मैं केवल यही कह सकता हूँ कि मैं आप ही की जाति का और एक अच्छे कुल का हूँ। बस, कृपा करके और आगे मत पूछिये। मैं उत्तर नहीं दे सकूँगा। मेरी धृष्टता क्षमा कीजिये।"

"क्यों प्रमोद, अपना परिचय क्यों नहीं देना चाहते? तुम मेरे साथ केवल थोड़े दिन रहे हो; किन्तु इन्हीं थोड़े दिनों में तुमने मेरे हृदय को न मालूम किस प्रकार इतना वश में कर लिया है कि मैं तुम्हें ज़रा भी उदास नहीं देख सकता। यदि तुम्हें अपना परिचय देने में दुःख होता है तो अब मैं तुम्हारा परिचय चाहूँगा ही नहीं। मैंने अभी तक तुम्हें नहीं बताया था कि तुम्हारा परिचय मैं क्यों चाहता हूँ। लो, अब मैं वह भी बताये देता

हूँ। तुमने मेरी पुत्री सरला को तो देखा ही है।"

"जी!"

"उसने भी तुम्हें देखा है और तुम्हारी सुशीलता बहुत पसन्द करती है। अगर मेरा कहना मानो तो सरला के साथ अपना विवाह कर लो। तुम्हारी बीबी तो मर ही गयी है। कनक का भी जीवन सुखमय हो जायगा।"

प्रतिभा घबड़ा गई। अपने मालिक की आज्ञा किस प्रकार टाले, कहीं वह गुस्सा न हो जायँ; और यदि मानें भी तो कैसे मानें। स्वयं स्त्री होकर एक बालिका के साथ किस तरह ब्याह कर लें। केवल एक बात कहने से सब झगड़ा मिट सकता; किन्तु कहे कैसे, फिर वह कहाँ जायगी। और कोई उपाय न देखकर प्रतिभा धीरे से बोली—बाबू जी, आप मेरे मालिक हैं और मैं आपका नौकर। भला कहीं मालिक और नौकर में भी ब्याह हो सकता है ?

उमाशंकर—नौकरी क्या होती है ? यह तो केवल लक्ष्मी के फेर का प्रभाव है। क्या मालूम कल को मैं ग़रीब हो जाऊँ और तुम्हारे यहाँ नौकरी करूँ, तब क्या मैं कुछ और हो जाऊँगा, या तुम ही कुछ और हो जाओगे ?

प्रतिभा (प्रमोद बाबू)—मेरे पास इतना धन भी तो नहीं है कि मैं आपकी लड़की को सुखपूर्वक रख सकूँ।

बाबू उमाशंकर बीच ही में बोल उठे—

इसकी कुछ चिन्ता मत करो। मेरा धन किस लिये है ? एक ही तो लड़की है। मदन अकेला कितना खर्च करेगा ?

प्रतिभा बड़े असमंजस में पड़ गई कि अब क्या कहे। अचानक उसे एक उपाय याद आया। वह बोली :—अपनी लड़की के सौन्दर्य्य को देखिये, फिर मेरी तरफ देखिये। जानबूझकर

यह अनमेल विवाह कर के अपनी एकमात्र पुत्री को कुएँ में मत ढकेलिये—उसके सिर पर दुःखों का बोझा मत लादिये।

बाबू उमाशंकर ने समझा कि प्रमोद बाबू केवल संकोचवश ऐसा कह रहे हैं। उस संकोच को दूर करने के लिये वह जल्दी से बोले—"अरे प्रमोद, आज तो तुम बहुत बुड्ढों की सी बातें कर रहे हो।" कहते कहते बाबू उमाशंकर कुछ गम्भीर हो गये—देखो प्रमोद, मेरे पद की तरफ देखो—मेरे मान—मेरी प्रतिष्ठा को देखो। कितने लोग मेरी सरला से ब्याह करने के लिये लालायित हैं—यदि किसी से मैं अपनी पुत्री के विवाह के लिये कहूँ तो उसे नहीं करने का साहस नहीं हो सकता। यदि तुम्हारी जगह कोई और होता और इस तरह मना करता तो मेरे गुस्से का ठिकाना नहीं रहता। किन्तु तुम में न मालूम कौन सी आकर्षणशक्ति है कि तुम्हारे मना करने पर गुस्से के बदले तुम्हारे लिये प्रेम उमड़ता है। यदि तुम पुरुष न होकर स्त्री होते तो मैं यही कहता कि मेरी स्त्री मरी नहीं है; किन्तु तुम्हारे भेष में फिर से मेरे पास आ गई है। देखो, बहुत मना करके मेरे हृदय को दुखी मत करो। रही मेरी लड़की की बात, सो वह ऊपरी सुन्दरता को नहीं देखती। मुझे मालूम हुआ है कि वह तुम्हें बहुत पसन्द करती है। इसलिये तुम्हें पाकर उसे असीम सुख होगा.......................।

बाबू उमाशंकर अभी कुछ और कहनेवाले थे; किन्तु एक नौकर ने डाक लाकर उनका मुँह बन्द कर दिया। उमाशंकर अपने ख़त पढ़कर अख़बार देखने लगे। सहसा उनकी दृष्टि एक कालम पर पड़ी। प्रतिभा को लक्ष्य कर वह बोले—

प्रमोद, देखो यह क्या ?

प्रतिभा सिर ऊँचा करके ताकने लगी। बाबू उमाशंकर के

मुरझाये मुँह पर भी, यह देखकर, हँसी की हलकी झलक छा गयी। वह कुछ मुस्कराते हुए बोले—वाह प्रमोद, मालूम होता है, तुम्हारी आखें क्या हैं, मदगल हैं, जो तुम उतनी दूर से पढ़ सकोगे। तुम तो इतनी दूर रहते हो कि शायद कोई औरत भी आदमियों से इतना परहेज़ न करती होगी। अरे, मेरे पास आ कर पढ़ो न।

प्रतिभा कुछ चौंक पड़ी। उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो बाबू उमाशङ्कर को मालूम हो गया है कि वह मर्द नहीं औरत है। उसने एक दबी दृष्टि से ज़मीन्दार साहब की तरफ़ देखा; किन्तु वहां पर सन्देह की कोई बात न पाकर उसे कुछ धीरज हुआ। वह कुछ झिझकती हुई बोली—

बाबूजी, आप जोर से तो पढ़ेंगे ही, फिर देखकर क्या करूँ।

उमाशङ्कर अपनी हँसी न रोक सके। हँसते ही हँसते उन्होंने कहा—खूब! यों ही क्यों न कह दिया कि मुझे पढ़कर सुना दो। लो, इतना काम मुझ से करवाते हो, फिर भी अपने को नौकर बताते हो!

प्रतिभा शरमा गई। उसके मुँह पर हलकी गुलाबी देखकर बाबू उमाशङ्कर के मुँह से हठात् निकल गया—प्रमोद, न मालूम ईश्वर ने तुम्हें स्त्री बनाते बनाते पुरुष क्यों बना दिया! तुम स्त्री होते तो ठीक रहता!

उमाशङ्कर ने अपनी दृष्टि अख़बार के उसी कालम पर जमाई, जिससे वह प्रतिभा के मुँह के चढ़ाव-उतार को न देख सके। उन्हें नहीं मालूम हुआ कि उनके वचनों का प्रतिभा पर क्या प्रभाव पड़ा। वे ज़ोर ज़ोर से पढ़ने लगे—

"मधुपुर गाँव के सुविख्यात ज़मीन्दार बाबू महेशचन्द्र अपनी खोई हुई पत्नी को ढूँढ़ने के लिये अपनी साली के साथ निकले

थे ; किन्तु खेद के साथ कहा जाता है कि उनमें से एक भी घर नहीं लौटा। उनका कोई ऐसा सम्बन्धी भी नहीं मिलता जो उनकी ज़मीन्दारी पाने का अधिकारी हो। अतएव वह ज़मीन्दारी अब सरकार की तरफ़ से बेची जायगी। ज़मीन्दारी बहुत भारी है। जो महाशय उसको लेना चाहें वे नीचे लिखे पते पर पत्रव्यवहार करें—

मैनेजर—मधुपुर गाँव,
ज़िला–श्यामगंज"

प्रतिभा एक एक शब्द सुनती जाती थी और उसके मुँह का रंग उड़ता जाता था। उसे ज़मीन्दारी की कोई चिन्ता नहीं थी। वह बार बार सोचती थी कि "महेश आखिर घर क्यों नहीं लौटे—वे अब कहाँ हैं—क्या वे अब इस संसार में................"
इसके आगे उसका हृदय घबड़ा जाता और कुछ सोच न सकती। बाबू उमाशंकर उस समय पढ़ने में लगे थे, इससे वे प्रतिभा के मुँह का चढ़ाव-उतार न देख सके। उमाशंकर ने पढ़ना समाप्त कर कहा—बोलो प्रमोद, तुम्हारी क्या राय है ? क्या यह ज़मीन्दारी खरीद लूँ ?

प्रतिभा मानो सोते से जगी। अपने मन के भावों को मन ही में दाबकर वह चुपचाप ज़मीन्दार साहब की तरफ़ देखने लगी।

उमाशंकर फिर बोले—प्रमोद, तुम तो कुछ बोलते ही नहीं। आज तुम्हें हो क्या गया है ?

प्रतिभा उस समय सोच रही थी—वे अवश्य जीवित हैं। किसी दूर देश में चले गये हैं। हाय ! मेरे ही कारण उन्हें भी गली गली भटकना पड़ रहा है। मैं नहीं जानती थी कि मेरी ज़रा सी जल्दबाज़ी का ऐसा भीषण परिणाम निकलेगा। मैंने

कितनी मूर्खता की। एक तो घर छोड़कर निकली। एक बार ज़रा कुछ अक्ल भी आई कि हिन्दू स्त्री का घर के बाहर आज-कल कहीं गुज़ारा नहीं। फिर न मालूम किस मूर्खतावश मेरे मन में स्त्री-भेष को छोड़कर पुरुष-भेष धरना सूझा। उस समय मैंने इसे जितना सहल समझा था, अब देखती हूँ, यह उतना सहल नहीं है। पग पग पर भंडा फूटने का डर जी को दहलाये देता है। न मालूम वह किस घड़ी की कुमति थी कि जिसके वश हो मैंने उनका, अपना, सबका सर्वनाश कर दिया। मुझे अपनी कुछ परवाह नहीं; किन्तु वे तो किसी प्रकार सुख से घर लौट जायें। मालूम नहीं, मेरे मन में कौन कह रहा है कि वे कभी न कभी लौटेंगे अवश्य। किन्तु फिर उनकी क्या दशा होगी? कहाँ जायँगे? ज़मीन्दारी तो सब बिकी जा रही है। चाहे जैसे हो, उनकी ज़मीन्दारी ज़रूर बचानी चाहिये............।

अचानक बाबू उमाशंकर का उपर्युक्त प्रश्न उसके कानों में गया। प्रतिभा ने कुछ शान्त होकर उत्तर दिया—"हां, अवश्य खरीद लीजिये। लेकिन एक बात है।" बाबू उमाशंकर ने कुछ उत्कण्ठित स्वर में कहा—क्या?

प्रतिभा—इस ज़मीन्दारी को मैं मोल लेना चाहता हूँ; किन्तु अभी मेरे पास रुपया थोड़ा ही है। आप मुझे थोड़ा सा रुपया उधार दे दीजिये। मैं नौकरी करके चुका दूँगा।

उमा०—यह क्या बड़ी बात है? तुम्हें जितना रुपया चाहिये, तुम खुशी से ले सकते हो। लेकिन मेरी राय में मोल लेने से पहले ज़मीन्दारी देख लेनी चाहिये।

प्रतिभा के मुँह से अपने आप ही निकल गया—जी, मैंने देखी है। मुझे वह ज़मीन्दारी पसन्द है।

उमा०—अच्छा, तब तो बहुत ठीक है। तुमने कब

देखी थी ?

प्रतिभा फिर आफ़त में फँस गई। वह किस प्रकार कहे कि "आप देखने की बात कहते हैं मैं तो उसकी अधीश्वरी ही थी।" कुछ सोचकर प्रतिभा ने उत्तर दिया—यहाँ आने से पहले मैंने वहाँ नौकरी करनी चाही थी; किन्तु नौकरी लगी नहीं।

उमा०—मैंने सुना है, बाबू महेशचन्द्र बहुत अच्छे आदमी हैं।

प्रतिभा ने बड़े गौरव से सिर उठाकर कहा—जी हाँ, वह मनुष्य नहीं, देवता हैं।

उमा०—मैंने एक बात और सुनी है।

प्रतिभा शङ्कित दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी।

उमा०—उन्होंने अपनी स्त्री को घर से निकाल दिया है और उसके बदले अपनी विधवा साली को रक्खा है।

प्रतिभा सिहर उठी। उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि उसके आत्मत्याग का परिणाम इतना भयंकर होगा। जिसके सुख के लिये उसने घरबार छोड़ा, उसी के ऊपर ऐसी भारी बदनामी का टीका लगकर उसे दुःख पहुँचायेगा।

प्रतिभा निरुत्तर होकर उमाशङ्कर की तरफ़ देखने लगी। प्रतिभा को चुप देखकर उमाशङ्कर बोले—

प्रमोद, तुम आज इतने चुप क्यों हो? कुछ बोलते क्यों नहीं?

प्रतिभा ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—क्या बोलूँ, मैं तो उन्हें ठीक से जानता ही नहीं, फिर कैसे कुछ बोलूँ।

उमा०—तो इसमें इतनी लम्बी साँस लेने की क्या ज़रूरत? मैं तो सोचता था कि तुम इतनी लम्बी साँस लेकर न मालूम क्या कहोगे।

बाबू उमाशङ्कर अभी कुछ और कहने ही वाले थे कि मदन

दौड़ता दौड़ता आया और उनकी उँगली पकड़कर बोला—

पिताजी, जल्दी चलो। तुम्हें एक चीज़ दिखाऊँ।

उमाशङ्कर ने प्यार से उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—क्यों बेटा, वह क्या चीज़ है?

मदन—आज हमारे गुड्डे का ब्याह है।

उमा०—और गुड़िया किसकी है?

मदन—कनक की।

उमा०—इतने बड़े हो गये, अब कब तक गुड़िया खेलोगे?

किन्तु मदन ने अपनी खुशी में कुछ सुना ही नहीं। वह अपने पिता का हाथ पकड़कर खींचने लगा। बाबू उमाशङ्कर कुछ हँसते हुए प्रतिभा से बोले—अब हम जाते हैं। यह इतना शरीर हो गया है, मानता ही नहीं।

उमाशङ्कर अभी कह ही रहे थे कि मदन अपने पूरे बल से उन्हें एक तरफ़ को घसीटने लगा। प्रतिभा ने प्रणाम किया; किन्तु सिर उठाते ही देखा कि मदन ज़मीन्दार साहब को उछलता-कूदता बहुत दूर तक ले गया है। प्रतिभा खड़ी खड़ी सोचने लगी—

यदि किसी प्रकार कनक का विवाह मदन के साथ हो जाता—किन्तु यह तो असम्भव सा दीखता है। कहीं बौना आसमान को छू सकता है?

१०

"मालती, तुम इतनी चुप क्यों हो ?"

इलाहाबाद में काश्मीरी होटल के एक सुसज्जित कमरे की शान्ति को भङ्ग करते हुए महेशचन्द्र ने मालती से पूछा। अपनी रेशमी साड़ी में लगे हुए सोने के ब्रोच को निकालती हुई मालती बोली—

कुछ नहीं, मैं यही सोच रही हूँ कि अब मेरा मन पूजा-पाठ में क्यों नहीं लगता।

महेशचन्द्र कुछ हँसते हुए बोले—तुम तो फिज़ूल की, न मालूम, क्या बातें सोचने लगती हो। मुझे तो कभी पूजा-पाठ का ध्यान भी नहीं आता।

महेश की दृष्टि एकाएक मालती के चमचमाते हुए ब्रोच पर पड़ी। मालती उस समय अपना ब्रोच डिबिया में बन्द कर रही थी। महेश ने जल्दी से जाकर मालती की कमल की पँखुड़ियों के समान सुन्दर कोमल उँगलियों को पकड़ लिया और बोले—मालती, तुमने यह क्या किया। यह ब्रोच तुम्हारी नीली साड़ी में छिपा हुआ तुम्हारी सौन्दर्य्य-छटा से चमक उठा था, उसे अपने से दूर कर तुमने कान्तिहीन क्यों कर दिया? देखो, ठीक ऐसा ही ब्रोच एक बार प्रतिभा ने लगाया था; किन्तु वहाँ ब्रोच अलग होकर ही चमचमाने लगा था।

मालती, मैं समझता हूँ कि प्रतिभा में क्या, सारी दुनिया में भी, इतना सौन्दर्य्य नहीं कि तुम्हारे आधे सौन्दर्य्य की भी बराबरी कर सके।

महेश बोलते-बोलते चुप हो गये और मनमुग्ध के समान मालती की रूपछटा की ओर निहारने लगे। महेश को अपनी

तरफ देखते देखकर मालती के गोरे मुँह पर लज्जा की गुलाबी छा गई। कुछ झिझकते झिझकते वह बोली—"आप क्या देख रहे हैं?" महेश मालती की ओर देखते ही देखते बोले—

मालती, तुम कोई स्वर्ग की देवी हो, नहीं तो इतना रूप तुम में कहाँ से आता। तुमको देखते ही सारा दुःख, सारी चिन्ता, दूर हो जाती है—लाओ, मालती, वह सामनेवाली मेज़ पर से बोतल उठा दो। उसकी सहायता से मैं रही-सही चिन्ता भी दूर कर दूँ। उसी की सहायता से मैं स्वर्ग में विहार करने लगूँ और तुम उर्वशी के समान मेरे आनन्द को बढ़ाना। लाओ, उसे जल्दी उठा दो।

मालती के मुँह पर छिटकती हुई हँसी जहाँ की तहाँ रुक गई। होंठ फिर सिकुड़ गये।

मालती को चुपचाप खड़ी देखकर महेश फिर बोले—क्यों, उसे लाती क्यों नहीं? लाओ, जल्दी लाओ।

मालती ने अपनी बड़ी बड़ी आँखें ऊपर उठाकर कहा—नहीं, अब इसे रहने दो। सारा रुपया ख़र्च हो आया है।

महेश—ऐसी बातें मत करो। अब इस दुनिया का ध्यान ही मत करो। रुपया चुक जायगा तो फिर और आ जायगा।

मालती—अब कहाँ से आयेगा? यहाँ परदेश में हमारा कौन है?

महेश—घर से मँगवा लेंगे। अच्छा लाओ, उसे उठा दो, अब देर न करो।

मालती—अच्छा, लेकिन पहले यह बताओ कि रुपया कहाँ से मँगाओगे।

महेश—क्यों, क्या घर नहीं है?

मालती—लेकिन उस दिन तो तुम कह रहे थे कि वहाँ

किसी को तुम्हारा पता ही नहीं मालूम है।

महेश—तो अब खत लिखकर भेज दूँगा।

मालती—और अगर कोई खत के साथ साथ आ जाये तो? तब अपना भेद कैसे छिपाओगे?

महेश—ऊँह! रहने दो इन बातों को। ऐसे सोचा जाय, तब न मालूम कितने 'तो'! 'और', 'कैसे' निकल आयें। इस समय तो वह बोतल उठा दो। उर्वशी के समान केवल रूप में ही न बनो। मैं जैसा ही रूप का प्यासा हूँ, वैसा ही इस सुधा-रस का भी।

महेश ने बोतल की ओर इशारा किया। मालती ने बड़े अनमने भाव से बोतल उठा दी। सुरादेवी ने धीरे धीरे बोतल से निकलकर गिलास में प्रवेश किया। गिलास के किनारों से सिर उठा-उठाकर झाग महेश की तरफ़ झाँकने लगे और महेश को अपनी तरफ़ सतृष्ण नेत्रों से देखते देख लजाकर सिर नीचा कर लेते। महेश अपना मन और न रोक सके और एक ही क्षण में गिलास से सुरादेवी उनके गले के नीचे उतर गई। मालती दूर खड़ी होकर महेश की प्रसन्नता देखने लगी। महेश ने अपना गिलास मालती की तरफ़ बढ़ाते हुए कहा—मालती, तुमने अभी तक इसे नहीं पिया, तभी तुम इसका स्वाद नहीं जानती और मुझे पीने के लिये मना कर रही हो। लो, आज तुम भी इसे चखो।

मालती ने सिर हिलाकर इन्कार किया; किन्तु बीच ही में महेश ने शराब का गिलास उसके होठों में लगा दिया, जिससे एक घूंट उसके गले के नीचे उतर गया। मालती ने घबड़ाकर सिर हटाया; किन्तु महेश ने पीछा न छोड़ा। लाचार होकर मालती ने गिलास अपने हाथ में ले लिया और धीरे धीरे पीने लगी।

एक गिलास, दो गिलास, होते होते बोतल खाली हो गई।

महेश ने नशे में झूमते झूमते कहा—प्रतिभा भी किस घमंड में भूली थी। उसमें न रूप था न तुम्हारे ऐसे गुण। अरे! अरे!! यह क्या? मालती-मालती, क्या तुम नाच रही हो? मालती ने भी उसी स्वर में कहा—वाह! वाह!! कमरा भी घूमने लगा।

महेश अपनी ही धुन में बोले—अहा! कितना सुख है! मालती ने भी स्वर मिलाया—कितना आनन्द है! बात पूरी हो भी नहीं पाई थी कि मालती धड़ाम से नीचे गिर पड़ी। महेश पकड़ने को बढ़े; किन्तु पैर लड़खड़ाने से वे भी बीच ही में गिर पड़े।

धीरे-धीरे रजनीदेवी ने अपना काला दुपट्टा समेटना शुरू किया। रास्ता साफ देखकर प्रातःकालीन शीतल झकोरा थिरकने लगा। महेश की आँख खुल गई। जम्हाई लेने से मक्खियाँ भिनभिनाती हुई उड़ गईं और जाकर मालती के मुँह पर बैठने लगीं। महेश ने मालती को जगाया। हाथ-मुँह धोकर दोनों इधर-उधर की बातें कर ही रहे थे कि चाय आ गई। नौकर ने चाय के साथ एक लिफाफा भी महेश को दिया और बाहर चला गया। महेश ने सशंकित दृष्टि से लिफाफे को देखा और फिर डरते डरते लिफ़ाफा खोला। लिफाफे के अन्दर होटल का एक बिल था और साथ ही मैनेजर साहब का लिखा हुआ एक पर्चा भी था। पर्चे में मैनेजर साहब ने बिल चुकाने का और होटल छोड़ने का आदेश दिया था; क्योंकि उनके रात रात भर के शोरगुल के कारण होटल की बदनामी फैल रही थी। बिल था पूरे दो सौ साठ रुपये का। महेश गुस्से में भनभनाने लगे और मैनेजर को उसके असद्व्यवहार के कारण खूब भली-बुरी कहने लगे। अपने गुस्से को शान्त करने का और उपाय न देखकर वे बोले—

मालती, दो सौ साठ रुपये अभी निकालकर भेज दो। इस मैनेजर में तो, मालूम होता है, मनुष्यता छू भी नहीं गई। जैसे मैं इसका रुपया खा जाता, या लेकर भाग जाता!

मालती ने रुपये निकालने के लिये सन्दूक खोला। किन्तु यह क्या! वहाँ तो केवल दो सौ उन्चास रुपये निकले। मालती सन्न हो गई। उसने डरते डरते महेश को हाल बताया। महेश ने अपनी झुँझलाहट मालती के ऊपर निकाली। वह कहने लगे—

और क्या होगा। तुम्हारे पीछे तो जो न देखना पड़े वही कम। औरत होकर गृहस्थी चलानी नहीं आती। रोज़ रोज़ नये फ़ैशन चाहियें। उनमें कमी हो तो रुपया बचे.........................।

महेश और न मालूम क्या न क्या बड़बड़ाते रहे। मालती चुपचाप सिर नीचा किये सुनती रही। यदि कभी एकाध आँसू टपकने का प्रयत्न करता तो मालती उसको वहीं पर रोक देती, जिससे कहीं महेश न देख लें। उसे अपनी दशा पर फिर पश्चात्ताप होने लगा। उसे फिर अपने माँ-बाप पर ग़ुस्सा आया कि उन्होंने क्यों उसका बचपन में ही ब्याह कर दिया और जन्म भर के लिये विधवा बनाया। आज को यदि वह विधवा न होती तो यह दुर्दशा क्यों होती। उसे अपने मन पर ग़ुस्सा आया कि क्यों वह बिना सोचे-समझे आग में कूद पड़ी। कूदने के पहले उसने महेश को पहचानने की कोशिश क्यों न की। उसका चंचल मन फिर बदला। अब की बार उसे महेश के ऊपर गुस्सा आया कि उन्होंने जानबूझकर उसका सर्वनाश क्यों किया। अपनी ज़रा सी प्यास बुझाने के लिये उसके सारे जीवन का सत्यानाश कर डाला। धीरे धीरे उसका गुस्सा महेश से उतरकर सारी पुरुष-जाति पर चढ़ा। उसके मन में आया—इनका क्या कसूर? ये तो बहुत सीधे हैं। पुरुष-जाति ही ऐसी है कि मृगतृष्णा के

समान चमक दिखाकर स्त्रीजाति को फँसाती है और फिर उसे तड़प-तड़पकर मरने के लिये छोड़ देती है। ये भी तो आखिर उसी जाति के आदमी हैं, फिर कहाँ तक उस गुण से दूर रह सकते हैं। ऊँह.................. ।

मालती अपनी इसी उधेड़-बुन में लगी थी कि महेश झुंझला कर बोले—मैं तब से क्या दीवालों से चीख रहा हूँ? जवाब ही नहीं देतीं—टस से मस नहीं होतीं! इतनी देर से घड़ी निकालने को कहता हूँ, कुछ सुनती ही नहीं!

मालती ने चौंककर सिर उठाया; किन्तु महेश की लाल लाल आँखें देखते ही उसका सारा शरीर काँप गया। महेश ने झुँझला कर ताली ले ली और हैंडबैग खोलकर अपनी सोने की घड़ी निकालकर बेंचने चल दिये। मालती देखती ही रह गई। उसके पतले होंठ कुछ कहने के लिये एक बार खुले; किन्तु शब्द निकलने के पहले ही काँपकर फिर चिपक गये। महेश के जाने के बाद वह वहीं बैठ गई और पागलों के समान एकटक आसमान की तरफ़ देखने लगी। इस दशा में न मालूम कितनी देर हो गई। एकाएक महेश ने आकर उसका ध्यान बँटाया। महेश ने उसके हाथ में एक रसीद दी और बोले—

मालती, जल्दी असबाब बाँधो। अब इस होटल में नहीं रहेंगे।

मालती—मैं नहीं जाऊँगी।

महेश—क्यों? क्या बुरा मान गईं? उस वक्त मालूम नहीं मुझे क्या हो रहा था। मालती, अब कभी नहीं कहूँगा—माफ़ करो!

मालती की सूखी आँखें फिर सजल हो गईं। उसने बड़ी कठिनता से अपने को सम्हाला। फिर बोली—आप यह क्या

कर रहे हैं? आपका कसूर ही क्या था। सब मेरे भाग्य का दोष है। असल में मैं अब जाऊँ कहाँ?

महेश—मधुपुर।

मालती के शरीर में सनसनी फैल गई। उसे ध्यान आ गया कि अब तो उसकी खूब बदनामी फैल गई होगी। उसकी आँखों के सामने सारा दृश्य नाच गया कि किस प्रकार उसके जाने पर गाँव की औरतें घृणा से मुँह फेरकर चुपचाप आपस में हँसेंगी। मालती ने कम्पित स्वर में कहा—वहाँ नहीं जाऊँगी।

महेश—क्यों?

मालती—'क्यों'—क्या अब फिर बताना होगा। याद कर लो कि मैं एक औरत हूँ, और वह भी, बाल-विधवा—फिर तुम्हें अपने आप ही इस 'क्यों' का उत्तर मिल जायगा। वहाँ तुम्हारा घर है! तुम जाओ! सुख से रहो! मेरे पीछे गलियों में मत भटको। मुझे तो अब इस संसार में भटकना ही है........।

कहते कहते मालती के गालों पर आँसू बह चले। महेश का भी हृदय पसीज गया। उन्होंने बड़े दिलासे के स्वर में कहा—

मालती, इतना घबड़ाती क्यों हो? तुम्हें मैं अकेली नहीं छोड़ूँगा। अगर मधुपुर नहीं चलना चाहती तो मैं भी नहीं जाऊँगा। यहीं पास ही किसी गाँव में रहकर दोनों जने अपने जीवन के शेष दिनों को बिता देंगे। रुपया नहीं तो नहीं सही—धन हो या न हो, कुछ परवाह नहीं; किन्तु अब अपने जीवन को शान्तिमय बनायेंगे।

मालती ने एक बार कृतज्ञता-भरी दृष्टि से महेश की ओर देखा। उसकी दृष्टि ही कह रही थी—कितने उदार हैं—कैसे उच्च भाव हैं!

११

उमर के साथ साथ कनक में अब कुछ गम्भीरता भी बढ़ गई। बाल-स्वभाव की वह चपलता तो समय होने से पहले ही बिदा माँगने लगी। अब कनक अपनी गुड़ियों के पीछे दीवानी नहीं रहती और न बे-सिर-पैर की बातों से अपनी माँ के ही कान खाती है। मदन अब भी आता है; किन्तु गुड़िया खेलने के लिये नहीं—पढ़ने के लिये। मदन अपने मास्टर साहब का पढ़ाया हुआ पाठ कनक के पास आकर याद करता है; क्योंकि उसे कुछ विश्वास हो गया है कि कनक के पास बैठकर याद करने से उसे अपना पाठ बहुत जल्दी याद हो जाता है। कनक भी मदन के साथ पढ़ने लगती है। इस प्रकार कनक को भी थोड़ा बहुत पढ़ना आ गया है।

किताब बन्द करके मदन ने कहा—कनक, चलो अब ज़रा घूम आयें।

कनक—कहाँ चलोगे?

मदन—आज चलो हमारे बाग़ में घूमो।

कनक—अच्छी बात है।

दोनों घूमने के लिये चल दिये। चलते चलते मदन ने कहा—

क्यों कनक, क्या अब तुम्हारा मन लड़का बनने को नहीं होता?

कनक का लज्जा से सिर नीचे झुका; किन्तु दूसरे ही क्षण सिर उठाकर उसने कहा—

मन होने से क्या होता है? मन की सारी बातें तो नहीं हो सकतीं?

मदन—मतलब यह कि तुम अब भी लड़का बनना चाहती हो।

कनक—नहीं, यह तो असम्भव है, फिर उसके लिये इच्छा करना ही फ़िज़ूल है। अच्छा, एक बात कहूँ, मानोगे?

मदन—लो, पहले से ही 'हाँ' करवाये लेती हो? बात तो बताओ!

कनक—देखो मदन, मैं हँसी नहीं करती। मैं सचमुच कहती हूँ कि यहाँ की स्त्रियों की दशा देखकर मेरा मन बहुत दुःखी होता है। क्या तुम्हें बुरा नहीं लगता?

मदन—अकेले मुझे लगने न लगने से क्या होता है?

कनक—नहीं, ऐसा मत कहो। तुम लड़के हो। समाज की तुम्हारे ऊपर कृपा है। तुम अकेले ही बहुत कर सकते हो।

मदन—मैं जो कुछ कर सकता हूँ, उसे करने के लिये तैयार हूँ।

कनक—तुम और तो नहीं, कम से कम, इतना तो अभी कर सकते हो कि अपने आप स्त्रियों पर अत्याचार न करो।

• मदन कनक की तरफ़ देखने लगा। एक स्वर्गीय तेज कनक के मुँह पर छा रहा था, जिसको देखकर मदन का सिर अपने आप ही नीचे झुक गया। मदन ने सिर नीचा ही किये कहा—कनक, तुम कौन हो? तुम एक सञ्चालिनी शक्ति मालूम होती हो, जो मेरे इस निरर्थक जीवन को सफलता की सीढ़ी की तरफ़ खींचे लिये जा रही हो। देखो, मुझे बीच ही में मत छोड़ देना।

कनक के गम्भीर मुँह पर हलकी मुस्कराहट नाचने लगी। कनक ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया—मैं सिर्फ़ कनक हूँ और कोई नहीं। अगर तुम्हें मुझसे इतना सहारा मिलता है तो मैं उसे देने के लिये तैयार हूँ। मैं लड़का नहीं बन सकता; लेकिन लड़कों

को मदद तो दे सकती हूँ। मैं पूरी मदद देने के लिये तैयार हूँ। मदन का सिर कुछ ऊपर उठा। उसने कनक की तरफ़ देखते हुए पूछा—

पूरी तरह ?

कनक—हाँ, पूरी तरह।

मदन—जीवन भर।

कनक ने दृढ़ता से कहा—हाँ।

मदन का मुँह प्रसन्नता से खिल उठा। उसने कहा, "कनक, देखो, अपने शब्द भूल मत जाना।" कनक के गले में सफेद मोतियों की एक लड़ लटक रही थी। उसने वह लड़ अपने गले से निकाली और डूबते हुए सूर्य्य की तरफ उँगली उठाकर कहा—सूर्य्य भगवान् बादलों में से झाँक रहे हैं। मैं उन्हीं को साक्षी बनाकर कहती हूँ कि मैं पूरी तरह से तैयार हूँ—लो, आज की निशानी स्वरूप म तुम्हें यह लड़ देती हूँ। यही लड़ हम लोगों को कार्य्यक्षेत्र की ओर उत्साहित करेगी।

कनक ने कहते कहते वह लड़ मदन के गले में पहना दी। मदन ने माला पहनकर कहा—कनक, मैं तुम्हारी इस माला की रक्षा करने का भरसक प्रयत्न करूँगा। जब देखूँगा कि मैं रक्षा नहीं कर सकता तो उसे फिर तुम्हें लौटा दूँगा।

कनक ने एक स्थिर दृष्टि मदन के मुँह पर डाली। वहाँ पर उसे कोई भी उद्वेग का चिन्ह नहीं दिखाई पड़ा। किन्तु उसके हृदय में न मालूम क्यों खलबली मची हुई थी। उसने कुछ त्रिक-म्पित स्वर में कहा—मदन, मेरे पीछे से क्या अपने शब्दों को याद रक्खोगे ? कहीं इन पुराने दिनों को भूल तो नहीं जाओगे ?

मदन के चेहरे पर अशान्ति की झलक छा गई। जो उसकी लाख चेष्टा करने पर भी कनक की दृष्टि से न छिप सकी। अपनी

अस्थिरता को बलपूर्वक दाबकर मदन ने पूछा—हाँ, कनक मैंने सुना है कि तुम लोग अब मधुपुर जानेवाली हो—क्या मालूम है कि कब तक जाओगी ?

कनक का गला भर आया। उसने उसी भर्राये हुए स्वर में उत्तर दिया—

कुछ ठीक नहीं। शायद दो-तीन दिन में चली जाऊँगी।

मदन ने कनक की तरफ से दृष्टि हटाकर अपने पीछे डूबते हुए सूर्य्य की तरफ डाली। कनक मदन का मुँह न देख सकी—केवल एक लम्बी साँस सुनी। इतने में नौकर ने आकर कहा—बीबीजी, जल्दी चलिये। आप के पिताजी बुला रहे हैं।

कनक ने बिना देखे ही उत्तर दिया—

अभी आती हूँ। तुम चलो।

नौकर के जाने पर मदन ने कहा—

अच्छा कनक, अब जाता हूँ।

कनक—अच्छा, मैंने जो कुछ अनुचित कहा हो उसे क्षमा करना। देखो, अपनी प्रतिज्ञा को याद रखना—मैं उसे लौटालेना नहीं चाहती। इससे कोई ऐसा अवसर मत आने देना जो उसे लौटालने की आवश्यकता पड़े।

मदन ने केवल सिर हिलाकर उत्तर दिया—

'अच्छा'। और फिर जल्दी से चलने लगे। कनक खड़ी-खड़ी देखती रही। जब तक मदन दिखाई पड़े तब तक कनक चुपचाप खड़ी देखती रही। फिर धीरे-धीरे अपने घर की तरफ़ चल दी।

१२

बाबू महेशचन्द्र को घर से निकले हुए आज पूरे छः साल होगये। यह साल उन्हें बराबर घूमते ही बीता। इलाहाबाद के काश्मीरी होटल में अपनी सारी धन-सम्पत्ति स्वाहा करके फिर महेशचन्द्र को कहीं रहने का स्थान न मिला। इतने दिनों में उन्हें प्रायः नित्य नये शहरों के दर्शन करने पड़े। महेश को दुःख सहने की आदत तो थी नहीं, इससे इतना ही दुख पाकर वे घबड़ा गये। सारा कसूर उन्हें मालती का ही मालूम पड़ा। मालती को ही इन सब दुःखों की जड़ समझकर वे मन ही मन मालती से चिढ़ गये। अब बात बात पर उसके ऊपर झल्ला उठते—कभी कभी गालियाँ तक दे बैठते। मालती ने यह परिवर्तन देखा; किन्तु कुछ कारण समझ न सकी। उसने सोचा कि शायद परदेश में घूमते घूमते महेश बाबू थक गये हैं और गरीबी का कष्ट सहते सहते कुछ चिड़चिड़े हो गये हैं। उसने इस विषय में एक बार महेश से भी बात की थी और उन्हें मधुपुर लौट जाने की सलाह दी थी; किन्तु महेश तैयार नहीं हुए थे। उन्होंने उत्तर दिया था कि जिस जगह इतनी शान से रहा वहाँ अब इस हीनावस्था में कैसे जाऊँ। मालती चुपचाप महेश के परिवर्तन को देखती और मन ही मन दुखी होती। अब महेश उससे ठीक ढंग से बातें भी नहीं करते थे। हर घड़ी चिड़चिड़ाते रहते थे। इस प्रकार आपस में मनमुटाव होने पर भी दोनों जैसे-तैसे दिन बिता रहे थे।

घूमते-घामते दोनों प्राणी गौरीपुर गाँव में पहुँचे और वहाँ पर एक कुटी में रहने लगे। उस कुटी में रहते उन्हें कोई पाँच-छः महीने हो गये हैं। इन दिनों बाबू महेशचन्द्र

अपने साधू वेष में किसी तरफ चल देते और जो कोई कुछ दे देता उसे लेकर अपनी टूटी-फूटी झोपड़ी में लौट आते। पहले तो महेशचन्द्र इस वेष को धरने में बहुत हिचकिचाये; किन्तु फिर मरता क्या न करता! अब उन्हें बारबार प्रतिभा की याद आती। वह सोचते कि क्या कभी वह "घर की लक्ष्मी" फिर घर को लौटेगी। साथ ही साथ उन्हें अपने ऊपर क्रोध आता कि पहले उन्होंने प्रतिभा को क्यों नहीं पहचाना। जिस दिन उन्हें जितना ही कष्ट मिलता उस दिन उतनी ही उन्हें प्रतिभा की याद आती। रह-रहकर पछतावा होता; किन्तु अब अपनी भूल कहें तो किससे कहें। लाचार होकर मन ही मन कुढ़ने लगे।

आज सावन की झड़ी में भीगते हुए महेश ने आकर कहा—मालती, मैं चारों तरफ़ घूम आया; लेकिन कहीं कुछ न मिला।

टूटी झोपड़ी में पानी भर गया था। उसे उलीचती हुई मालती बोली—क्या कुछ भी नहीं मिला? मालती की बात सुनकर महेश झल्ला पड़े—अगर मिलता तो मैं कहता ही क्यों?

मालती ने सिर ऊपर उठाया। महेश उस समय ग़ुस्से में भुन रहे थे; किन्तु मालती की उधर दृष्टि नहीं गई। उसकी दृष्टि गई महेश के भीगे हुए वस्त्रों पर। वह बहुत शान्तिपूर्वक बोली, मानो उसने महेश की बात सुनी ही न हो—तुम्हारे कपड़े भीग गये हैं। हाय! और कपड़े भी नहीं हैं जो तुम्हें बदलने को दे दूँ। अच्छा, लाओ, मैं यों ही निचोड़कर तुम्हारे कपड़े सुखा दूँ।

मालती हाथ पोंछती हुई उठने लगी; किन्तु उसे वहीं पर झिड़ककर महेश बोले—बड़ा लाड़ दिखाने आई हो। भूख के मारे मरा जाता हूँ, यह नहीं होता कि कुछ खाने को दो!

मालती—खाने को भी देती हूँ, पहले कपड़े तो सूखें।

महेश—नहीं, कपड़े सुखाने की इतनी ज़रूरत नहीं है। पहले खाने को दो।

मालती ने कल अपने हिस्से में से थोड़े से चने बचाकर रख लिये थे। आज वह उन्हीं को निकाल लायी।

चनों को देखते ही महेश चिड़चिड़ा पड़े—इसी को गृहस्थी कहते हैं? दिन भर के थके-प्यासे आओ तो घर में मिले—मुट्ठी भर सूखा चना!

मालती ने बड़ी दीनता से कहा—अच्छा तुमहीं बताओ मैं क्या करती। कुछ होता तब तो रखती।

महेश—यह कुछ मैं नहीं जानता। लेकिन इतना तो ज़रूर कहूँगा, कि अगर तुम्हारी जगह इस समय प्रतिभा होती तो आज को यह सूखे चने न पल्ले पड़ते!

मालती के मन में आया कि कह दें कि वह तो कल की भूखी है। उसे तो यह सूखे चने भी न मिले। किन्तु फिर महेश का थका हुआ मुँह देखकर चुप होगई। महेश एक तो भूख के मारे झल्ला रहे थे, फिर ऊपर से जब उन्होंने मालती को चुप खड़ी देखा तब और बिगड़ पड़े—

चुप क्यों खड़ी हो? क्या मेरे जाने की रास्ता देखती हो जो तुम्हें कुछ रक्खा हुआ चुपके से खाने को मिले? क्यों! अच्छा लाओ—तुम्हें खूब खिला दूँ!

महेश एकाएक आगे बढ़े और मालती के बाल पकड़ खींचकर दो घूँसे मारे और बोले—ले, जा! खूब मन भर के खा ले। मैं अब तुम्हारा साथ ही छोड़ दूँगा। ऐसी जगह तो रहना ही आफ़त है!

महेश यह कहते कहते कुटी के बाहर हो गये।

मालती ने सिर घुमाकर एक बार महेश की तरफ़ देखा,

फिर अपने घुटनों में सिर छिपाकर रोने लगी। वह सब कुछ सह सकती थी—केवल यह व्यर्थ की मार नहीं सह सकती थी। महेश के आज के अमानुषिक व्यवहार ने उसके हृदय को बहुत चोट पहुँचाई थी। इसी से वह रोने लगी।

पवन ने मन्दगति से आकर उसके कान में फुसफुसाया—अब क्यों रोती हो। जैसा किया वैसा भोगो!

मालती का हृदय काँप गया। सचमुच बिना सोचे-समझे वह क्या कर बैठी! किन्तु अब क्या हो सकता था—अब तो उसका अपने ऊपर भी वश नहीं रहा था। उसने ऊपर सिर उठाया और देखा कि डूबते हुए सूर्य्य उसकी तरफ करुणा से झाँक रहे हैं। आसमान उसके हलके गुलाबी मुँह की हिर्स कर अपना मुँह भी लाल रंग में रँग रहा था। मालती की सफ़ेद कोमल उंगलियों को कमल की पंखुड़ियाँ समझकर एक भौंरा भनभनाता हुआ आया और उसके हाथ पर बैठने लगा। भौंरे के स्पर्श से मालती चौंकी और भौंरे को ज़ोर से झटककर बोली—

कहीं चले गये! ओफ! क्या इतने निर्दयी हैं—मुझे यहाँ परदेश में इस प्रकार अकेली छोड़कर कहीं नहीं जा सकते। अभी नहीं तो थोड़ी देर में तो ज़रूर लौट आयेंगे। अच्छा, अब जब आयेंगे तो उनसे बोलूँगी भी नहीं।

मालती ने बाहर झाँका। तारों से जड़ी हुई रजनीदेवी चन्द्रदेव के साथ संसारक्षेत्र में विहार कर रही थीं; किन्तु महेश का कहीं पता नहीं था। निशादेवी के साथ निशानाथ मालती की टूटी-फूटी झोपड़ी में झाँक-झाँककर हँसने लगे। मालती ने धोती से मुँह ढक लिया।

धीरे धीरे ग्यारह बजे, बारह बजे, एक भी बजा। मालती घबड़ाकर उठी और फिर अपनी झोपड़ी के दरवाज़े पर खड़ी

हो गयी। आँखें फाड़-फाड़कर वह जहाँ तक देख सकी, उसने महेशचन्द्र को ढूँढ़ा; किन्तु महेश का कहीं निशान तक न दिखायी पड़ा। हताश होकर मालती ने एक आह ली और साथ ही साथ कहा—क्या अब नहीं लौटेंगे!

मालती वहीं गीली ज़मीन में लेटकर रोने लगी। निद्रा-देवी का हृदय दया से भर गया और उन्होंने दबे पैरों आकर मालती का सिर अपनी गोद में रख लिया और आँसू पोंछने लगीं। न मालूम मालती किस समय सो गयी।

१२

सुचतुर चित्रकार "प्रातःकाल" आकर संसार-चित्र को भाँति भाँति के रंगों से रँगने लगा। चिड़ियों की चहचहाहट सुनते ही मालती जाग पड़ी। रात की सारी बातें उसे एक एक कर के याद आने लगीं। उनको बुरा स्वप्न समझकर मालती ने महेश को ढूँढा कि अपना स्वप्न उनसे भी कहे। किन्तु वहाँ महेश कहाँ! उसके मुंह से हठात् निकल गया—तो क्या यह स्वप्न नहीं था—सब सच था? उसने फिर सिर ऊपर उठाया और चारों ओर देखने लगी। सूनी झोंपड़ी मानो मुँह फैलाकर उसे खाने को दौड़ी। मालती डरकर झोंपड़ी से बाहर भागी। किन्तु वहाँ भी सुनसान देखकर वह हताश हो गई और झोंपड़ी के पास ही बैठकर रोने लगी। भगवान् भास्कर सिर उठाकर मालती की तरफ देखने लगे और धूप उसकी गोद में बैठने का व्यर्थ प्रयत्न करने लगी।

मालती ने घबड़ाकर फिर सिर उठाया। चारों ओर शान्ति छा रही थी—मालती की झोंपड़ी सांय-सांय कर रही थी। मालती उठकर जल्दी जल्दी एक पेड़ की तरफ़ भागने लगी। इतने में पीछे से स्नेहमय स्वर सुनकर वह खड़ी होगई। मालती के पीछे से कोई कह रहा था—बेटी, क्या हुआ? क्यों भाग रही हो? क्या डर गई बेटी?

मालती ने पीछे मुड़कर देखा, एक बुड्ढी औरत उसकी तरफ़ आ रही थी। मालती पेड़ की डाल पकड़कर खड़ी हो गई। बुड्ढी पास आकर बोली—बेटी, तुम्हें क्या हो गया है? मालती चुपचाप उसकी ओर देखने लगी। बुड्ढी फिर बोली—तुम मुझे पहचानती नहीं। लेकिन इससे क्या! घबड़ाने की कोई ज़रूरत नहीं। मालूम होता है, तुम रास्ता भूल गई। चलो, मैं बता दूँ।

मालती फिर भी चुपचाप उसकी ओर देखती रही। बुड्ढी ने और पास आकर उसका हाथ पकड़ा और एक तरफ़ को खींचती हुई बोली—तुम बहुत दुःखी मालूम होती हो। घबड़ाओ मत बेटी, मैं तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा दूँगी। बताओ, तुम्हारा घर कहाँ है बेटी?

ऐसे प्रेममय मधुर शब्द सुनते ही मालती का भरा हुआ हृदय उमड़ पड़ा। वह बुड्ढी का हाथ पकड़कर रोने लगी। मालती के आँसू पोंछकर आश्वासन के स्वर में फिर बुड्ढी बोली—

क्यों, बताती क्यों नहीं? क्या घर नहीं जाना चाहती?

मालती ने सिसकते सिसकते कहा—मैं क्या बताऊँ, मेरा घर ही नहीं है।

बुड्ढी ने फिर बड़े स्नेह से कहा—तो रोती क्यों हो? अगर तुम चाहो तो मेरे घर चलो। मैं तुम्हें बिलकुल अपनी बेटी

के समान रक्खूँगी। मालती के मन में आया कि अपनी सुसराल का पता बता दें; किन्तु साहस न हुआ कि वहाँ क्या मुँह लेकर जायँ। और यह तो वह जानती ही थी कि सुसरालवाले अब उसे घर की चौखट भी नहीं लांघने देंगे। और यदि मधुपुर का पता बताये तो वहाँ किसके पास जाय; क्योंकि प्रतिभा वहाँ थी नहीं और महेश के भी होने की बहुत ही कम सम्भावना थी। हाँ, यदि महेश वहाँ होते तो अपनी बदनामी की भी कुछ परवाह न करके वह वहाँ चली जाती; किन्तु यह वह कैसे समझे कि महेश मधुपुर में अवश्य होंगे।

मालती कुछ तय न कर सकी। उसे गुम-सुम देखकर बुड्ढी फिर बोली—

मालूम होता है, तुम जानना चाहती हो कि मैं कौन हूँ। घबड़ाओ मत। मैं तुम्हारी कुछ बुराई नहीं करूँगी। तुम्हें बड़े सुख से रक्खूँगी। मुझे यहाँ के करीब करीब सब बड़े आदमी जानते हैं। कम से कम इसी से विश्वास करो कि यह बुढ़िया तुम्हारा कुछ नुकसान नहीं करेगी। अच्छा, बताओ बेटी, तुम कौन हो? मैंने तुम्हें आज से पहले कभी नहीं देखा; लेकिन फिर भी मुझे न जाने क्यों ऐसा लगता है, मानो तुम मेरी अपनी बेटी हो।

अपने मन में नाना भावों के उदय होने से और बुड्ढी की बातें सुनने से मालती की अजीब दशा हो गई। वह पागलों के समान चुपचाप बुड्ढी के मुँह की तरफ देखने लगी। बुड्ढा ने फिर कहा—क्या तुम्हारा ब्याह हो गया है?

बुड्ढी के प्रश्न ने मालती के कानों में प्रवेश किया। मालती ने 'नहीं' कहना चाहा; क्योंकि उसके लिये ब्याह होना न होना बराबर था; किन्तु किसी अज्ञात शक्ति ने अचानक उसके मुँह से

'हाँ' निकाल दिया।

बुड्ढा—तुम्हारे पति कहाँ हैं ?

मालती ने दुःखित स्वर में कहा—मेरे पति मधु...नहीं—ओह—मेरे पति कहीं नहीं हैं, मैं बालविधवा हूँ।

कहते कहते मालती की सूखी आँखें फिर सजल हो आईं। उसे बीती हुई बातें फिर याद आ गईं। बुड्ढी ने समझा कि वह अपने वैधव्य पर दुखित हो रही है। बड़ी समवेदना दर्शाती हुई बोली—सचमुच विधवा होना बड़े दुःख की बात है और खासकर हिन्दुओं में! लेकिन क्या हम लोग कुछ उलट-फेर थोड़े ही कर सकते हैं।

मालती के वैधव्य पर आज तक किसी ने इतने स्नेह से आश्वासन नहीं दिया था। मालती की आँखों में भरे हुए आँसू धीरे धीरे बह चले। बुड्ढा ने मालती को धीरज बँधाते हुए कहा—रोती क्यों हो? रोने से फ़ायदा? इन बातों को जाने दो। अच्छा बेटी, बताओ तुम्हारा नाम क्या है?

मालती ने सिर उठाकर हवा में उड़ते हुए उसके सफ़ेद बालों को देखा और फिर झुर्रियाँ पड़े हुए पापले मुँह की तरफ़ देखकर धीरे से कहा—मालती।

बुड्ढी प्रसन्न होकर बोली—वाह! जैसा रूप सुन्दर, वैसा ही नाम भी सुन्दर। अच्छा चलो बेटी, बहुत देर हो रही है। तुम्हारे लिये और कहीं जगह नहीं है; लेकिन मैं तुम्हें अपने सिर-आँखों पर बैठाऊँगी।

बुड्ढी के मुँह पर एक विकट मुस्कराहट छा गई; किन्तु मालती उसे नहीं देख पायी; क्योंकि उसकी दृष्टि आँसुओं के कारण, बन्द हो गयी थी। अपनी विजय पर मुस्कराती हुई बुड्ढी ने मालती का कोमल हाथ पकड़ा और एक तरफ़ को ले चली।

थोड़ी देर में मालती की आँखें फिर अपने आप ही सूख गईं और वह कठपुतलियों के समान बुड्ढी के साथ जाने लगी। चलते चलते बुड्ढी एक दुमंजिले मकान के पास आकर खड़ी हो गयी और मालती से बोली—

"चलो बेटी मालती, ऊपर चढ़ो। घर आ गया।" ऊपर से हारमोनियम की आवाज़ आ रही थी, जिसे सुनकर मालती कुछ चौंकी। उसने चकित होकर पूछा—किसका घर?

बुड्ढी शान्तिपूर्वक बोली, मानो उसने मालती को चौंकते देखा ही न हो—"यही मेरा घर है। ऊपर मेरी लड़की शायद गा रही है।"

बुड्ढी ने मालती का हाथ पकड़ा और जल्दी जल्दी ऊपर चढ़ने लगी। मालती का हृदय किसी अज्ञात आशंका से काँप उठा। वह भयभीत हिरणी के समान एक एक कदम चढ़ने लगी।

बुड्ढी ने मालती को ले जाकर एक सजे हुए कमरे में बैठाया और बोली—

"बेटी, तुम यहाँ बैठो। थक गई होगी। मैं तब तक जाकर हाथ-मुँह धोने के लिये पानी लाती हूँ और कुछ खाने का इन्तज़ाम करती हूँ।" बुड्ढी मालती को एक पंखा देकर चली गई। कमरे की सजावट देखकर मालती हैरान हो गई। वह बारबार मन में सोचने लगी—यह बुड्ढी कौन है? अगर इतनी अमीर है तो इस तरह घूमती-फिरती क्यों रहती है? घर में कोई नौकर-चाकर भी नहीं दिखाई पड़ता। अजब गोरख-धन्धा है। कुछ समझ में नहीं आता। मालती अपने विचारों में निमग्न हो गई। एकाएक पास के कमरे में से आती हुई फुसफुसाहट को सुनकर वह चौंक पड़ी। कोई स्त्री अपने वीणा-विनिन्दित स्वर में कह रही थी—

कहो ज़ैनब, क्या बात है ? तुम तो बहुत .खुश दिखाई पड़ती हो ।

मालती को पहचानने में देर न लगी कि यह स्वर उसी का है जो अभी थोड़ी देर पहले गा रही थी।

मालती को फिर बुड्ढी का वही सुपरिचित स्वर सुनायी पड़ा—बीबी ज़मीला, क्या कहूँ । अब बुढ़ापे में बड़ी मुश्किल से एक नया शिकार फाँसा है। यह क्या कुछ कम ख़ुशी की बात है ?

मालती घबड़ा गई । अब उसे ध्यान आया कि वह कहाँ फँस गई है। उसने हाथ जोड़कर ऊपर की ओर देखा और कहा—परमात्मन् ! क्या अब अन्त में मुझे वेश्या भी बनवाओगे ? इतने में बुड्ढी ज़ैनब का वही सुपरिचित स्वर सुनाई पड़ा—इतनी ख़ूबसूरत है कि क्या कहूँ । भोली भी बहुत है । ऐसा भोलापन और ऐसी ख़ूबसूरती मैंने आज तक किसी में नहीं देखी । उस फटी धोती में तो उसके सुस्त चेहरे की ख़ूबसूरती टपकी पड़ती है । फिर ज़मीला का स्वर सुनाई पड़ा—क्या वह राज़ी है ?

बुड्ढी ज़ैनब की आवाज़ सुनाई दी—अरे ! उसके राज़ी होने में क्या है ! वह इतनी सीधी है कि उसके साथ बहुत चाल नहीं चलनी पड़ेगी । अहा ! ख़ूब आमदनी होगी । लेकिन ज़रा धीरे बोलो । कमरा पास ही है ।

मालती और न सुन सकी । वह जल्दी बाहर भागने के लिये उठी ; किन्तु दरवाज़ा बाहर से बन्द था । न मालूम बुढ़िया ने किस समय दरवाज़े बन्द कर दिये थे । मालती हताश होकर बैठ गई और चुपचाप रोने लगी । अधसूखी आँखें फिर से तर हो गयीं ।

१४

बाबू महेशचन्द्र घर से निकलकर जल्दी जल्दी एक तरफ़ को चले जा रहे हैं। उन्हें नहीं मालूम है कि कहाँ जा रहे हैं। मशीन के पुरजों के समान उनका पैर अपने आप ही एक के बाद दूसरा उठता जा रहा था। धीरे धीरे रजनीदेवी ने आकर 'सन्ध्या' के रक्तरंजित मुख को अपने काले दुपट्टे से ढँक लिया। तारागण आपस में लुकने-छिपने का खेल खेलने लगे। चन्द्रदेव आसमान पर आये और तारागणों का खेल देखकर मुस्कराने लगे। समस्त प्रकृति आनन्दमय हो गई; किन्तु महेश का उधर कुछ ध्यान ही नहीं गया। वे चुपचाप चले जा रहे थे और कुछ विचार बार-बार आकर उनके मानस-भवन में टकराने लगे—

मालती, यदि मैं पहले जानता कि तुम कैसी हो तो आज यह दिन न देखना पड़ता। तुम्हारे लिये मैंने भीख तक माँगी। अगर एक दिन मैं कुछ नहीं ला सका तो तुमने मुझे कुछ खाने को भी न दिया। अपने आप खूब ठूँसा—अच्छा, प्रतिभा! प्रतिभा!! तुम कहाँ हो? आओ! जल्दी आओ! जब तुम थी तब तुम्हें न पहचान सका; लेकिन अब तुम्हें पहचानने में भूल न करूँगा। हाय! मैं भी कितना मूर्ख हूँ! किस भ्रम में अभी तक पड़ा था............।

महेशचन्द्र एक पेड़ के पास खड़े हो गये। उन्होंने सिर घुमाकर देखा। चारों तरफ रात का अन्धेरा बढ़ता चला आ रहा था। एकाएक उनके मन में आया—एक को तो जीवन में नाश कर ही चुका हूँ। प्रतिभा अब तक बैठी थोड़े ही होगी। उसके साथ ही कनक का भी कुछ पता नहीं कि कहाँ गई—जीती है या मर गई। इतना पापी होकर अब फिर और पाप क्यों बढ़ाऊँ—

दूसरे का जीवन क्यों नाश करूँ। कहीं मालती आत्महत्या न कर ले। अब उसका तो कहीं न कहीं ठिकाना लगाना ही होगा।

महेश अपनी पुरानी झोपड़ी के लिये लौटे। किन्तु जाँय किधर, कुछ स्थिर न कर सके। उन्होंने रास्ते पर कुछ ध्यान नहीं दिया था जो रास्ता समझ सकते। रात का अंधेरा धीरे धीरे बढ़कर उस स्थान को और भी अपरिचित बना रहा था। उस समय क्रोध के आवेश में महेशचन्द्र इतनी दूर तक चले आये थे; किन्तु अब उस आवेश के उतर जाने से चलने की वह शक्ति भी चली गई थी। महेश को इतना साहस न हुआ कि उस अन्धेरे में रास्ता ढूँढ़ निकालें। एक तो भूख का प्रकोप, ऊपर से प्यास की आग और फिर हृदय का अचानक धक्का! सब ने मिलकर महेश को विवश कर दिया और वे वहीं ज़मीन पर लेट गये। धीरे-धीरे निद्रादेवी आकर उनके शरीर को सह-लाने लगीं। थोड़ी देर के लिये सांसारिक दुख, चिन्ता सब महेश से बिदा हो गये।

एकाएक किसी के करस्पर्श ने उन्हें जगा दिया। आँखें खोल-कर महेश ने देखा कि अन्धेरे में, एक लट्ठ लिये हुए, एक काली मूर्त्ति उन्हें जगा रही है। बहुत ध्यान से देखने पर महेश को मालूम हुआ कि यह काली मूर्त्ति किसी आदमी की है। उस समय ऐसे निर्जन स्थान में उस अपरिचित पुरुष को देखकर महेश डर गये। आगन्तुक गम्भीर ध्वनि में बोला—

बताओ, तुम्हारे पास क्या क्या है? अपना भला चाहते हो तो सब रुपया-पैसा चुपचाप दे दो। नहीं तो मेरे कन्धे पर की लाठी तुम्हारा सिर चूर चूर कर देगी।

महेश ने बहुत बोलने का प्रयत्न किया; किन्तु डर तथा भूख की कमज़ोरी के कारण उनके मुँह से कोई शब्द न निकला।

बड़ी कठिनता से वह पड़े ही पड़े बोले—

तुम कौन हो ? भाई, ज़रा-सा कुछ खाने को दे दो, फिर चाहे मार डालना।

महेश के अटकते हुए शब्दों में, लड़खड़ाते हुए स्वर में, कुछ ऐसा प्रभाव था कि उससे आगन्तुक न बच सका। अपनी जेब से एक चोर-लैम्प निकालकर उसने महेश के मुँह पर रोशनी डाली। महेश की बड़ी बड़ी अधखुली आँखें जो आगन्तुक से दीनता की याचना कर रही थीं, तेज प्रकाश देखकर अपने आप बन्द हो गयीं। उनके बिखरे हुए घुँघराले बालों में लगी हुई धूल रोशनी में चमक उठी। उस लैम्प का प्रकाश महेश के पीले मुरझाये हुए मुँह पर पड़कर अपने आप भी पीला हो गया। आगन्तुक ने महेश के मुँह से लैम्प ज़रा अलग हटाया, जिससे महेश की आँखें फिर खुल गईं। महेश ने देखा कि आगन्तुक के मुँह पर डाकू होने पर भी एक अपूर्व तेज छा रहा है। आगन्तुक ने ज़रा झुककर महेश का निर्बल हाथ अपने सुदृढ़ हाथों में पकड़ा और उनको ऊपर उठाता हुआ बोला—

आओ भाई, तुमने मुझे एक बार भाई कह दिया। तुम्हारी दशा देखकर मेरे कट्टर हृदय में भी न मालूम कहाँ से करुणा का स्रोत बहने लगा। डाकू विजयसिंह इतना नीच नहीं है कि अपने भाई को ऐसी दशा में छोड़कर चल दे। पास ही मेरा घोड़ा खड़ा है। मुझे मज़बूती से पकड़ लो और मेरे कन्धे पर सिर रखकर वहाँ तक चलो।

महेश ने अपना दूसरा हाथ भी विजयसिंह की तरफ़ बढ़ा दिया। विजयसिंह ने हाथ को पकड़ लिया और धीरे धीरे चलकर महेश को अपने घोड़े की पीठ पर बैठा दिया। घोड़ा अपने मालिक को देखकर हिनहिनाया। विजयसिंह ने प्यार से घोड़े

को थपथपाया और कहा—बेटा, क्या बात है? आज हम दो जनों को ले चलो। मेहनत से घबड़ाना नहीं बेटा, चलो।

अपने मालिक का स्वर सुनकर घोड़े ने कान खड़े किये और फिर हवा से बातें करने लगा। उस शून्य निर्जन प्रदेश में थोड़ी देर तक घोड़े की टाप गूँजती रही। सूर्य्य उगते उगते दोनों भाई विन्ध्याचल के निर्जन बन में पहुँच गये। विजयसिंह ने सीटी बजाई, जिसे सुनते ही नक़ाब डाले हुए दो मनुष्यों ने आकर सिर नवाया। विजयसिंह ने गम्भीर स्वर में कहा—जाओ, सब लोगों को इकट्ठा करो।

विजयसिंह घोड़े से उतरे और महेश को लेकर एक तरफ़ को चल दिये। वह दोनों आगन्तुक भी 'बहुत अच्छा' कहकर एक ओर की झाड़ी में घुसकर अदृश्य हो गये।

बाबू महेशचन्द्र विजयसिंह के घर पहुँचकर लेट गये। थोड़ी देर में उनके पास कुछ जलपान के लिये पहुँचा, जिसे वे खा ही रहे थे कि बीस-पचीस मनुष्य आकर दरवाज़े के पास खड़े हो गये। विजयसिंह ज़ोर से बोले—

भाइयो, आज हर्ष की बात है कि हमारा एक भाई और बढ़ा। आओ, अच्छी तरह देख लो।

विजयसिंह के चुप होने पर एक-एक डाकू आ-आकर दरवाज़े पर खड़ा होने लगा। सब से पीछे स्वयं विजयसिंह आये; किन्तु वे और डाकुओं के समान दरवाज़े से लौटे नहीं। वे सीधे जाकर महेश की खाट पर बैठ गये। बिना बोले ही उनकी दृष्टि ने महेश का कुशल-प्रश्न पूछा। अपने हृदय के उद्वेग को मन में ही रोककर महेश बोले—

मैं नहीं समझ सकता कि आप मनुष्य हैं या कौन हैं? आप अपने को डाकू बताते हैं; किन्तु क्या कभी डाकू भी किसी की

प्राणरक्षा करते हैं ? मैं नहीं समझ सकता कि इस उदारता के लिए मैं आपको किन शब्दों में धन्यवाद दूँ। आपने मुझे जीवन-दान दिया है। विजयसिंह ने शान्त भाव से मुस्कराते हुए उत्तर दिया—

नहीं, मुझे धन्यवाद देने की ज़रूरत नहीं है। मैंने सिर्फ़ अपना कर्तव्य-पालन किया है। मरते हुए की रक्षा करना मेरा कर्तव्य था। जो अपने आप मरता हो उसे मारना क्षत्रिय-धर्म नहीं है। मैं डाकू हूँ तो क्या, क्षत्री तो हूँ।

विजयसिंह गर्व से अपनी मूछों पर हाथ फेरने लगे। महेश-चन्द्र ने सकुचाते हुए कहा—मैं एक बात पूछना चाहता हूँ। अभी मुझे पूछना नहीं चाहिये; क्योंकि इतनी थोड़ी देर के परिचय में भीतरी हाल जानने की चेष्टा करना अनुचित है; किन्तु फिर भी आपकी सहृदयता जानकर कुछ साहस बढ़ता है। आप जब एक अपरिचित को इतनी देर में भाई बना सकते हैं तो फिर इस भाई की एक ज़रा सी इच्छा पूरी करने की भी सहृदयता दिखायेंगे..........."।

बीच ही में विजयसिंह बोल पड़े—इतनी लम्बी भूमिका सुनते सुनते मेरे कान थक गये। बताओ, तुम क्या पूछना चाहते हो ? एक बार जब तुम्हें भाई बना लिया तब फिर अब तुम्हारे डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। महेश ने एक बार विजय-सिंह के मुँह की तरफ देखा। वहाँ पर उद्विग्नता का कोई लक्षण न पाकर वे बोले—आपके भाव तो इतने ऊँचे हैं; लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि फिर आप डाकू क्यों बन गये और क्षत्रिय-धर्म क्यों न पाला।

विजय—इसके बहुत से कारण हैं। मैं उन्हें फिर समझाऊँगा। अभी तो बस छोटा सा उत्तर दिये देता हूँ। मैं डाकू बना हूँ

अपना कर्तव्य पालने के लिये। अरे, तुम चौंकते क्यों हो? आज-कल का समय ही ऐसा है। कितने लोग निरपराधों पर अत्याचार करते हैं। मैं उन निरपराधों को लेकर भाग आता हूँ और फिर वे मेरे 'भाई' बन जाते हैं। आज तुमने मेरे जितने भाइयों को देखा है उनमें से अधिकतर ऐसे ही मनुष्य हैं और देखिये, आज-कल देश में कैसा हाहाकार मचा है। अमीर आदमी गरीबों का ख़ून चूसकर मौज उड़ाते हैं—कितने गरीब भूख से छटपटा कर मर जाते हैं। मैं अपने इन्हीं गरीब भाइयों की सेवा करता हूँ। अमीर आदमियों का धन लूटकर इन अधमरों को जिलाता हूँ। यही मेरा डाका है। इसीलिए मैं डाकू बना हूँ।

महेशचन्द्र विजयसिंह के मुँह की तरफ देख रहे थे। एक बार दृढ़ता की झलक, एक बार सरलता की ज्योति, आ-आकर विजयसिंह के चेहरे पर छा जाती थी। महेश चित्र-लिखित पुतली के समान विजयसिंह की लम्बी वक्तृता सुनते रहे।

१५

ज़मीन्दार साहब के यहाँ से प्रतिभा जल्दी जल्दी कदम उठाती हुई अपने घर में आई। आज उसका मन किसी काम में न लगा। उसका मन रह-रहकर मधुपुर में पहुँचता और वहाँ के अपने उसी सुपरिचित घर में अटक जाता। बार बार महेश-चन्द्र का करुणापूर्ण मुँह उसकी आँखों के सामने आकर मानो कहने लगता—

• प्रतिभा, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुमने मेरी ऐसी

दशा कर दी। देखो, तुम्हारे ही पीछे मुझे अपना घर छोड़कर रास्ते रास्ते भटकना पड़ रहा है। तुम्हारे पीछे मैं बदनाम हो गया हूँ। क्या यही तुम्हारा पतिव्रत है?

प्रतिभा की आँखों से आँसू बहने लगे। अपने सूनसान कमरे में वह अपने आप ही बड़बड़ाने लगी—मुझे क्षमा करो। मेरी उतावली को क्षमा करो, जिसने मुझे ठीक परिणाम पर पहुँचने से रोका। मैंने तुम्हारे ही सुख के लिए घर छोड़ा, आराम छोड़ा, अपना सारा सुख छोड़ा। मुझे नहीं मालूम था कि इससे तुम्हारा दुःख उल्टा बढ़ेगा—जिसमें मैंने भलाई सोची उसमें बुराई हुई। मैं तो अब भी तुम्हारे पास लौट आऊँ; किन्तु तुम अब हो कहाँ?

प्रतिभा का हृदय काँप उठा। उसके हृदय से प्रतिध्वनि निकली—क्या तुम अभी तक जीवित हो? प्रतिभा के मुँह से केवल इतना निकला—परमात्मन्, परमात्मन्, मेरे मन में कैसे भयंकर विचार आते हैं। ओफ़ !

प्रतिभा बिस्तर पर पड़कर रोने लगी। उसे मालूम भी नहीं हुआ कि कनक किस समय आकर उसके सिरहाने खड़ी हो गई। कनक थोड़ी देर अपनी माँ का सिसकना देखती रही। अन्त में अधीर होकर वह प्रतिभा के पास बैठ गई और बोली—

माँ, तुम रोती क्यों हो?

कनक का स्वर सुनकर प्रतिभा ने जल्दी से अपनी आँखें पोंछीं। फिर कहा—

कहाँ? कहीं तो नहीं रोती।

कनक—क्या मैं देखती नहीं हूँ? मालूम नहीं, तुम्हें क्या हो गया है!

प्रतिभा ने बात टालते हुए कहा—

कनक, क्या तुम्हें मालूम है कि मैंने तुम्हें क्यों बुलवाया था ?

कनक—मालूम है। शायद मधुपुर जाने के लिये।

प्रतिभा—हाँ, अच्छी बात है। तो अब जाओ और चलने की तैयारी करो।

कनक—लेकिन कब जाना होगा ?

प्रतिभा—कल दोपहर।

कनक थोड़ी देर चुप रही। फिर बोली—माँ, अगर न चलें तो क्या कुछ हर्ज होगा ? मधुपुर क्यों जा रही हो ?

प्रतिभा—क्या अब यह भी बताना होगा ? अच्छा सुनो। तुम्हें यह तो मालूम ही है कि मधुपुर में अपना घर है। उसी घर को बचाने के लिये वहाँ जाना होगा।

कनक—मैं नहीं समझी कि वहाँ जाकर कैसे घर बचा सकेंगे।

प्रतिभा इस समय जितना ही कनक को टाल रही थी उतनी ही वह और अड़ रही थी। विवश होकर प्रतिभा ने कहा—

वह भी कहती हूँ। ज़रा धीरज रक्खो। तुम्हारे पिताजी मधुपुर छोड़कर कहीं चले गये हैं। बहुत दिनों से उनका कहीं पता नहीं चला। वहाँ के मैनेजर साहब अब उस ज़मीन्दारी को बेच रहे हैं। मैं उसी ज़मीन्दारी को मोल लूँगी।

कनक—तुम उसे लेकर क्या करोगी ? तुम्हारे लिए इतना काफी नहीं है ?

प्रतिभा—नहीं, मेरा यह मतलब नहीं है। मैं उसे तुम्हारे पिताजी के लिये ख़रीदूँगी। क्या मालूम, कभी वे लौट आयें, तब फिर वे कहाँ रहेंगे ?

कनक—उन्हीं पिताजी की तुम्हें इतनी चिन्ता है जिनके पीछे तुम्हें घर छोड़ना और ज़मीन्दारी होते हुए भी दूसरों के टुकड़े

खाने पड़े! जहाँ अपना मान नहीं—जहाँ सम्मान नहीं, वह चाहे रहे चाहे मिट्टी में मिल जाये!

प्रतिभा बीच ही में बोल पड़ी—

चुप रहो, मैं तुम्हारी कुछ राय नहीं पूछती। बड़ों के लिये ऐसी बात कहते शरम नहीं आती?

कनक ने अभी तक अपनी माँ को ग़ुस्सा होते नहीं देखा था। आज उसका यह भावान्तर देखकर वह चकित हो गयी।

दोनों माँ बेटी अभी बातें कर ही रही थीं कि ज़मीन्दार साहब के यहाँ से बुलावा आगया। प्रतिभा ने हाथ-मुँह धोया, अपने कपड़े ठीक किये, फिर अनमने भाव से धीरे धीरे ज़मीन्दार साहब के घर की तरफ़ चल दी।

ज़मीन्दार साहब मानों प्रतिभा की रास्ता ही देख रहे थे। प्रतिभा को देखते ही वे बोले—प्रमोद, तुम्हें आज क्या हो गया है? मुँह इतना उतरा हुआ क्यों है? क्या तबियत ठीक नहीं है?

प्रतिभा ने उत्तर दिया—जी, तबियत तो ठीक है। ज़रा-सा सिर में दर्द हो रहा है।

उमाशङ्कर—तो तुमने कहला क्यों न दिया, फ़िज़ूल में यह तकलीफ़ उठायी।

यह कहकर ज़मीन्दार साहब ने एक नौकर से दवा लाने को कहा। फिर बोले—मैं बाबू महेशचन्द्र की ज़मीन्दारी के ही विषय में बातें करना चाहता था। बताओ, तुमने कब जाने के लिये निश्चय किया?

प्रतिभा—कल दोपहर।

उमाशङ्कर—नहीं, कोई ज़रूरत नहीं है। जब तक तुम्हारी तबियत ठीक न हो तब तक यहीं रहो।

प्रतिभा—मेरी तबियत बिल्कुल ठीक है। मैं कल ही चला जाऊँगा।

उमाशङ्कर ने दृढ़ता से कहा—नहीं, कम से कम कल तो तुम नहीं जा सकते।

प्रतिभा ने धीरे से उत्तर दिया—जैसी आपकी आज्ञा। अचानक प्रतिभा ने देखा कि मदन सामने से जा रहा है और उसका मुँह प्रसन्नता से खिल रहा है।

१६

पाठकगण शायद हतभागिनी मालती को न भूले होंगे। चलिये, अब ज़रा मालती का भी कुछ समाचार ले आयें। बाहर का दरवाज़ा बन्द देखकर मालती हताश होकर रोने लगी थी। न मालूम कितनी देर तक रोती रही। एकाएक कुछ आहट सुनकर उसने ऊपर सिर उठाया। एक हाथ में पानी का लोटा लेकर बुड्ढी कमरे में आ रही थी। मालती ने फिर अपना सिर नीचे झुका लिया। बुड्ढी ने लोटा ज़मीन पर रक्खा और फिर बोली—लो बेटी, मैं पानी ले आयी हूँ। उठो, हाथ-मुँह धो लो।

मालती ने बिना सिर उठाये ही कहा—अभी धो लूँगी।

बुड्ढी ने मालती के रुँधे हुए कण्ठ को सुना। उसने कितने ही शिकार फँसाये थे; किन्तु यह नया शिकार तो बहुत अद्भुत था। इतना तो कोई भी नहीं रोता था। बुड्ढी के मन में एक बार आया कि मालती को छोड़ दें, नहीं तो वह रोते रोते पागल

हो जायगी। क्या मालूम, वह मर-भरा ही न जाये। किन्तु इतना रूप, इतना सौन्दर्य्य—इससे तो बुड्ढी कुछ ही दिनों में मालामाल हो जायेगी। बुड्ढी अपना लालच न सम्हाल सकी। उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि मालती को अपने जाल में ऐसा जकड़ेगी कि वह कभी निकल न सके। उस समय उसने कुछ छेड़छाड़ करना उचित नहीं समझा। इससे वह चुपचाप कमरे से बाहर हो गई।

बुड्ढी चली गई। मालती ने सोचा कि अब समय ठीक है। दरवाज़े खुले पड़े हैं। निकल भागूँ। किन्तु दूसरे ही क्षण उसके मन में आया कि इतनी जल्दी ठीक नहीं। क्या मालूम, बुड्ढी छिपकर देख ही रही हो। मालती सोचने लगी कि किस प्रकार बुड्ढी की आँखों में धूल झोंके। मालती ने उठकर दरवाज़ा अन्दर से बन्द किया, फिर कमरे में चारों तरफ़ घूम-घूमकर देखने लगी। किन्तु कहीं भी भागने का रास्ता दिखाई न पड़ा। कमरे में पीछे की तरफ़ दो खिड़कियाँ थीं। मालती ने देखा कि पश्चिमवाली खिड़की के पास एक बहुत लम्बा-सा पेड़ है। उसने सोचा कि चलो, इसी पेड़ से काम निकल जायेगा। यदि गिर भी पड़ी तो क्या। मर ही तो जायेगी। धर्म तो बचेगा। घृणित वेश्यावृत्ति से तो रक्षा होगी। मालती ने एक शान्ति की साँस ली। इतने में किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। मालती चौकन्नी हो गई और बहुत सम्हलकर उसने दरवाज़ा खोल दिया। बुड्ढी फिर कमरे में घुसी। पानी का लोटा अभी तक वैसा ही भरा रक्खा था। बुड्ढी ने बहुत ही मीठे स्वर में पूछा—क्यों बेटी, अभी तक मुँह-हाथ नहीं धोया?

मालती—नहीं, थोड़ी देर में धो लूँगी।

बुड्ढी—थोड़ी देर में कब धोओगी? इतनी देर तो हो गयी।

मालती—बात यह है कि जल्दी हाथ-मुँह धोने से भूख भी जल्दी लगेगी।

बुड्ढी—तो फ़िक्र क्या है? खाना भी तैयार है।

मालती—लेकिन मैं तो अभी नहीं खा सकती। आज मैं व्रती हूँ। कल से पहले कुछ नहीं खा सकती। पानी तक नहीं पी सकती। बड़ी कमज़ोरी मालूम होती है। क्या लेटने के लिये कोई खाट मिल जायेगी? बुड्ढी को अब कुछ धीरज हुआ। उसने सोचा कि अब मालती पर शक करना व्यर्थ है। शायद शक करने से उसे भी कुछ शक हो जाये। उसकी आवाज़ शायद कमज़ोरी और थकन के मारे भरी रही थी। अभी नयी जगह है। धीरे धीरे मन लग ही जायेगा। उसने जल्दी से उत्तर दिया—

हाँ, हाँ, मैं अभी खाट लिये आती हूँ।

मालती—अच्छा, खाट फिर ले आना, नहीं तो मुझे बता देना, मैं ही उठा लाऊँगी। तुम इतनी बुड्ढी हो, कैसे खाट उठा पाओगी। ज़रा बैठो। तुम से कुछ बातें करने को मन चाहता है। तुम से पहले कोई भी मुझसे इतने प्यार से नहीं बोला था।

बुड्ढी मालती की बनावटी बातों में आ गयी। वह मन ही मन में अपनी इस झूँठी विजय पर बहुत .खुश हुई और बड़े आनन्द से बैठकर बातें करने लगी। मालती ने बड़ी सावधानी से पूछा—बुड्ढी, तुम्हारा घर इतना बड़ा है, यहाँ अकेले तुम्हारा जी नहीं घबड़ाता?

बुड्ढी—रहते रहते आदत पड़ गयी है। कभी कभी मेरे रिश्तेदार आ जाते हैं, जिससे मन और बहल जाता है।

मालती ने मन में कहा—हाँ, शायद अभी इस पास के कमरे में भी किसी रिश्तेदार ही से बातें कर रही थीं।

इंधर-उधर की बातें करके मालती को मालूम हो गया कि

इस घर से बाहर जाने का सिर्फ़ एक ही रास्ता है और वह भी वही, जिससे वह ऊपर आयी थी। थोड़ी देर बाद बुड्ढी बोली—अच्छा अब जाती हूँ। ज़रा घर का काम देखूँ, फिर तुम्हारे लिये खाट ले आऊँगी।

बुड्ढी के चले जाने पर मालती के मुँह पर उस दुःख के समय भी प्रसन्नता छा गयी। अपनी विजय पर वह इतनी .खुश थी कि लाख प्रयत्न करने पर भी वह प्रसन्नता छिपा न सकी। रह-रहकर उसके मन में आता था—खूब बुड्ढी को धोखा दिया। न मालूम मुझे उस समय ऐसी बातें बनाना कहाँ से आ गया था।

बुड्ढी जब खाट लेकर आयी तो उसने देखा कि मालती बहुत.प्रसन्न है। इससे उसे और भी खुशी हुई। खाट पर साफ़ और मुलायम बिस्तर बिछाकर वह बोली—कुछ और चाहिये?

मालती—नहीं, लेकिन एक बात कहनी है। मैं अगर सो जाऊँ तो मुझे जगाना मत। कई दिनों से अच्छी तरह सो नहीं पायी।

बुड्ढी—अच्छी बात है।

उसे और शान्ति हुई कि शिकार के भागने का भी डर गया।

मालती ने फिर कहा—कल मेरा व्रत ख़तम होगा। इसलिये मैं गंगा नहाना चाहती हूँ। क्या कल इसका कुछ इन्तज़ाम कर सकोगी?

"गंगा नहाना" सुनकर बुड्ढी चौंकी। उसे सन्देह होने लगा कि कहीं मालती उस समय भाग न जाये, या गंगा में ही डूब न जाये। मना करने से भी नहीं बनता था; क्योंकि तब मालती को अपनी कैद का सन्देह हो जाता।

बुड्ढी को चुप देखकर मालती बोली—

अगर कुछ इन्तज़ाम नहीं कर सकती हो तो न सही। मैं नहीं जाऊँगी।

बुड्ढी फिर चौंकी। यदि मालती को मालूम हो जायगा कि वह गंगा नहाने नहीं जा सकती तो कहीं वह रात को ही भागने की कोशिश न करे। माना, वह भोली बहुत है, उस पर शक करना ठीक नहीं। लेकिन फिर भी पहले से होशियार रहना अच्छा है। बुड्ढी ने बहुत सोच-विचारकर उत्तर दिया—

हाँ, इन्तज़ाम हो जायगा।

मालती ने बुड्ढी को विदा कर कमरे का दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया। फिर उसने खिड़की से झाँककर देखा कि सूर्य्य भगवान् डूब गये हैं और अन्धेरा चारों तरफ़ फैल गया है—मानो चारों तरफ की दिशायें अपना काला वस्त्र फैलाकर कह रही हैं—धीरज रखकर घर से बाहर निकल आओ। घबड़ाओ मत। हम तुम्हें अपने इस काले वस्त्र में छिपा लेंगी। फिर तुम्हें कोई भी न देख सकेगा।

और देर करना ठीक न समझकर मालती पश्चिमवाली खिड़की पर पहुँची और वहाँ से फिर झाँकी। पेड़ अपनी पत्तियाँ हिला-हिलाकर मालती को बुलाने लगा। मालती ने जल्दी से बिस्तर की चद्दर खिड़की में बाँधी और पेड़ की एक डाल पर उतर गयी। पेड़ में कई शाखायें थीं, जिससे मालती बहुत आसानी से नीचे उतर गई। नीचे उतरकर उसने सबसे पहले ज़ीने की कुण्डी बाहर से बन्द कर दी। बुड्ढी को इस प्रकार उसी के घर में क़ैद कर मालती सोचने लगी कि अब जाय कहाँ। सड़क पर सुनसान थी। थोड़ा देर तक चुपचाप खड़ी रहकर मालती जल्दी से एक तरफ़ को मुड़ी।

बुड्ढी उसी समय कमरे में लैम्प जलाने आयी; किन्तु दरवाज़ा

बन्द देखकर वह दराज़ों से झाँकने लगी। अन्दर अन्धेरा होने के कारण वह कुछ देख न सकी। तब वह खड़ी होकर आवाज़ की टोह लेने लगी। कमरा सन्नाटे में साँय साँय कर रहा था। तब उसने सोचा कि मालती खूब गहरी नींद में सो रही है और चुपचाप दबे पैरों लौट गयी। उसे क्या मालूम था कि उसका शिकार निकल भागा है।

१७

महेशचन्द्र विजयसिंह के गुणों पर मुग्ध थे और विजयसिंह महेशचन्द्र के रूप पर। धीरे धीरे दोनों में मित्रता हो गयी। विजयसिंह के उद्देश महेश को इतने पसन्द थे कि उन्होंने भी उन्हें अंगीकार कर लिया और थोड़े ही दिनों में उस डाकूदल के एक मुखिया हो गये।

एक दिन दोनों मित्र एक पेड़ के नीचे बैठे बातें कर रहे थे। चारों ओर घने घने पेड़ सिर उठाये हुए आसमान को ढकने का प्रयत्न कर रहे थे। शीतल समीर का एक मन्द झकोरा आ-आकर महेश के घुँघराले बालों से अठखेलियाँ कर रहा था। थोड़ी देर चुप रहकर विजयसिंह बोले—

अच्छा भाई, जो हुआ सो हुआ। यह तो बताओ, तुमने वह ज़मीन्दारी क्यों छोड़ी और तुम्हारी वह शोचनीय दशा कैसे हो गयी थी। अब भी उसे सोचकर रोमाञ्च हो आता है।

महेश—उसे मत पूछो। वह सब मेरी मूर्खता का ही फल था।

विजय—तो क्या उसे अपने भाई को भी नहीं बताओगे?

महेश—नहीं, तुमसे कुछ नहीं छिपाऊँगा। अच्छा सुनो। तुम्हें मालूम ही है कि मैं एक बड़े भारी ज़मीन्दार का पुत्र था और वह भी अकेला। अपने माता-पिता की आँखों का मैं सितारा हो गया। उन्हें डर लगने लगा कि कहीं मेरा विवाह होने से पहले ही मर न जायें। घर में छोटी सी बहू आयेगी। इधर-उधर छम-छम करती फिरेगी। यही सब सोचकर उन्होंने मेरा विवाह कर दिया। मुझे मालूम नहीं कि किस समय मेरा विवाह हो गया। जब से होश सम्हाला तब से उसे अपने साथ देखा। सुना जाता है कि उसके बाप ने दहेज कम दिया था, जिसके कारण उसकी माँ मरती मर गई; लेकिन उसे किसी ने देखने को भी न भेजा। उसके थोड़े ही दिनों बाद उसके बाप का भी पता नहीं चला। शायद वह मर गये थे। मैं पहले वहीं अपने गाँव में पढ़ा करता था। जब बड़ा हुआ तो दूसरे शहर में कालेज में पढ़ने लगा। इधर मेरी पत्नी के एक लड़की हो गई। पहली बार में ही लड़की देखकर मेरे माता-पिता उससे और चिढ़ गये। अब घर का सारा काम उसके मत्थे मढ़ दिया गया। पहनने के लिये कपड़े कम दिये जाते। एक बार मैं छुट्टियों में घर गया। वह गन्दी चीकट धोती पहने हुए बर्तन माँज रही थी। जब से मैं कालेज में आया था तब से मैं कितनी ही रूपवती और फैशनेबिल स्त्रियों को देखने का आदी हो गया था। अब अपनी ही स्त्री को इस भेष में देखकर मुझे घृणा आई। उसके बिखरे हुए रूखे बालों की तरफ़ से मुँह फेरकर मैं चुपचाप माँ के पास चला गया। तब से मुझे उससे चिढ़ आने लगी। मैं बार बार मन में सोचता कि यह इतनी गन्दी क्यों है। जब देखों तब घी और तेल के धब्बों से सुसज्जित, मिट्टी के रंग में

रँगी हुई, धोती पहन कर आती है। मैं उसके कपड़ों को विशेष रूप से देखने लगा। किन्तु उसे कभी साफ़ न देखकर मैं अपने ही ऊपर झुँझला उठता। मुझे उस समय नहीं मालूम था कि इसमें उस बिचारी का कुछ दोष नहीं है। यह सब मेरी माँ की ही करतूत थी, जिससे कि मैं दूसरा विवाह कर लूँ............।

कहते कहते महेश की आँखों में आँसू छलक आये। विजयसिंह, जो अभी तक चुपचाप बैठे हुए सुन रहे थे, मानों अब सोते से जगे। उन्होंने तिरस्कारपूर्ण शब्दों में, किन्तु आश्वासन के स्वर में, कहा—छिः महेश, आदमी होकर रोते हो? रोये तो तुम्हारी स्त्री, जिसे सारा दुख झेलना पड़ा। तुम क्यों रोते हो?

महेश अपनी निर्बलता पर लज्जित हो गये और बलपूर्वक अपने उमड़ते हुए भावों को रोककर उन्होंने अपनी सारी आत्म-कथा सुनायी। सब सुनने के बाद विजयसिंह बोले—

मेरी समझ में नहीं आता कि जब तुम और मालती भूखों मरने लगे तो अपने गाँव को क्यों नहीं लौट गये?

महेश—इसके भी बहुत से कारण हैं। वह फिर कभी बताऊँगा। अभी सिर्फ़ इतना ही समझ लो कि मालती वहाँ जाने के लिये किसी प्रकार तैयार नहीं हुई।

दोनों मित्र फिर चुप हो गये। थोड़ी देर बाद विजयसिंह बोले—

तुमने मालती का जो पता बताया, उससे मैंने कितने आदमियों को भेजा—सारा गौरीपुर छनवा डाला; किन्तु कहीं उसका पता न चला।

महेश—शायद भूखी रह-रहकर वह मर गई होगी। अब मैं क्या करूँ। मेरा कर्तव्य था उसे ढुँढ़वाना, जब वह मिली नहीं तो मैं क्या करूँ।

विजय—नहीं, ऐसा मत कहो। तुम्हारा कर्तव्य इतना ही नहीं था। जिसके जीवन को तुमने नष्ट किया है, अब उसको कुछ सहारा भी तो देना है।

दोनों मित्र बातें कर ही रहे थे कि एक डाकू आ गया और प्रणाम कर के बोला—

आज एक बड़ा अच्छा मौका है। आज का डाका कई डाकों के बराबर होगा। प्रमोद बाबू नाम के किसी आदमी ने इन बाबू जी की (महेशचन्द्र की तरफ़ इशारा कर के) ज़मीन्दारी मोल ले ली है। उस नयी ज़मीन्दारी में दखल जमाने के लिये वे जाने-वाले हैं। यदि आज्ञा हो तो उन्हें रास्ते में ही लूटा जाय।

महेशचन्द्र ने अपनी ज़मीन्दारी की बात सुनकर एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा। विजयसिंह बोले—

लेकिन इससे तुमने यह परिणाम कैसे निकाला कि वे अपना सारा धन ले जा रहे हैं। वह नई जगह ठीक से देखे बिना अपनी कुछ धन-सम्पत्ति न ले जायें तो ?

डाकू—तो इससे क्या ! हम लोग उन्हें कैद कर लेंगे और जब तक वह हमारे लिये काफी धन नहीं मँगवायेंगे तब तक उन्हें छोड़ेंगे नहीं।

डाकू की युक्ति सुनकर विजयसिंह मुस्कराये और बोले—भाई, तुम हो तो बहुत होशियार। मेरी अक्ल में यह बात आई ही नहीं थी। मालूम नहीं, मेरे ऐसे कूड़मग़ज़ को तुम लोगों ने सरदार क्यों बनाया।

डाकू बीच ही में बोल पड़ा—अब इन बातों को रहने दीजिये। आप को जानना तो हम लोगों का काम है। बताइये, आप उसके लिए क्या आज्ञा देते हैं ?

विजय—मैं प्रमोद बाबू को विशेष रूप से नहीं जानता।

लेकिन इतना तो सोच सकता हूँ कि वे अमीर बहुत होंगे, नहीं तो इतनी भारी ज़मीन्दारी कैसे मोल ले सकते ? उनके पास से यदि थोड़ा सा धन ले लिया जाय तो उनकी कोई विशेष हानि नहीं होगी। जाओ, तुम लोग उन्हें लूटो; लेकिन कोई काम जङ्गलीपने से न हो। तुम चलो, मैं भी आ जाऊँगा।

डाकू प्रणाम कर के चला गया। प्रमोद बाबू को देखने की इच्छा से महेशचन्द्र भी डाके में सम्मिलित होने के लिये तैयार हो गये।

१८

बुड्ढी के घर के दरवाज़े की कुंडी बाहर से बन्द करके मालती एक तरफ़ की अन्धेरी सड़क में जाने लगी; किन्तु बार-बार पीछे मुड़कर देख लेती थी कि कहीं बुड्ढी आ तो नहीं रही है। पत्तों की ज़रा सी खड़खड़ाहट सुनकर वह चौंक पड़ती। कभी कभी अपने ही पैरों की ध्वनि सुनकर घबड़ा जाती। धीरे-धीरे मालती बहुत दूर निकल गई; किन्तु अभी तक वह यह निश्चय न कर सकी कि कहाँ जाय। गौरीपुर में वह किसी को जानती तो थी नहीं। चलते चलते वह थक गई। आँखों में नींद भर गई। भूख और प्यास से पैर डगमगाते थे। किन्तु मालती कहाँ बैठकर आराम करे। वह अपने इस जीवन से निराश हो गई। उसे मधुपुर के वे सुखमय दिन याद आने लगे; किन्तु जितना ही वे याद आते उतना ही उसके हृदय में और दुःख होता। उसने सोचा कि आत्महत्या कर ले; लेकिन उसी समय महेश की सूरत उसकी आँखों के सामने घूमने लगी। मालती ने मन ही मन

कहा—नहीं, ऐसे नहीं मरूँगी। एक बार उनसे यह ज़रूर पूछूँगी कि मुझे इस प्रकार छोड़कर एकाएक क्यों गायब हो गये। मैंने अपना लोक-परलोक छोड़कर उनकी शरण ली थी, फिर उन्होंने मुझे पैरों से क्यों ठुकराया ?

मालती थककर वहीं पर बैठ गयी। अचानक उसकी दृष्टि थोड़ी दूर पर टिमटिमाते हुए प्रकाश पर पड़ी। उसके डूबते हुए हृदय में बल का सञ्चार हुआ। वह फिर उठकर चलने लगी। प्रकाश एक कच्चे छोटे घर से आ रहा था। पास ही थोड़ी दूर पर कुछ और घर दिखलाई पड़े, जिससे मालूम होता था कि मालती एक गाँव में पहुँच गयी। मालती ने एक घर में पहुँचकर आश्रय पाने की प्रार्थना की, जिसे सुनकर मकान का मालिक बोला—अरे, ऐसी बातें मैं खूब जानता हूँ। तुम मुझे धोखा नहीं दे सकती।

बाहर कुछ बोल-चाल सुनकर घर की मालकिन ने खिड़की से झाँका। मालती के मुरझाये हुए मुँह पर दीपक का क्षीण प्रकाश थिरक रहा था। उसकी मनोहर सूरत देखकर गृहिणी सावधान हो गई। मालती उस समय गिड़गिड़ाकर कह रही थी—मैं सब कहूँगी; लेकिन अभी कुछ खाने को दे दो। भूख के मारे मरी जा रही हूँ।

गृहस्वामी—चल, चल, दूर हो, तेरी बक सुनने को मेरे पास समय नहीं है।

मालती फिर गिड़गिड़ाने लगी—मैं एक अनाथिनी विधवा हूँ। तुम भी हिन्दू मालूम होते हो। कम से कम इसी नाते से मेरी सहायता करो।

मालती कहते कहते बैठ गयी और दुख-भरी एक आह ली, जिसे सुनकर गृहस्वामी का भी हृदय पसीजा। वह अन्दर अपनी

गृहिणी से सम्मति लेने गया। गृहिणी बोली—

इतनी खूबसूरत औरत ! रात के समय इस तरह घूम रही है ! ज़रूर कुछ दाल में काला है। मेरी तो राय है नहीं कि उसे यहाँ ठहराकर फ़िज़ूल का झगड़ा मोल लिया जाय।

गृहस्वामी—औरत होने पर भी क्या तुम उसके साथ इतनी कठोर हो सकती हो ?

गृहिणी—नहीं, मैं कठोर नहीं हूँ। उसे ज़रा अन्दर भेज देना—मैं ही बाहर आजाती; लेकिन मुझे अभी यहाँ काम करना है।

गृहस्वामी ने बाहर आकर मालती को अन्दर भेजा। मालती के अन्धेरे हृदय में आशा की एक ज्योति दिखलाई पड़ी। गृहिणी ने पूछा—

तुम कौन हो ? और यहाँ कैसे आई ?

मालती ने क्षीण स्वर में कहा—अभी मुझ से बहुत बोला नहीं जाता। कुछ खाने को दो, फिर सब बता दूँगी।

उसका स्वर सुनकर और उतरा हुआ मुँह देखकर गृह-स्वामिनी को दया आ गई। कुछ दया के कारण, और कुछ मालती का हाल सुनने की उत्कण्ठा के कारण, गृहिणी ने जल्दी से कुछ रोटियाँ लाकर दीं। सूखी रोटियाँ चबाकर और एक लोटा पानी पीकर मालती कुछ स्वस्थ हुई और बोली—आज तुमने मेरी जान बचायी। ईश्वर तुम्हें और तुम्हारे घर भर को सुखी रक्खे।

गृहस्वामिनी के पूछने पर मालती कहने लगी—मैं बाल-विधवा हूँ। कुछ दिनों से गोविन्दपुर गाँव में मैं एक झोपड़ी बनाकर रहने लगी थी। मैंने सुना था कि उस गाँव के पास ही गङ्गाजी हैं। मेरे पास कोई और था नहीं, इसलिये मैं अकेली ही गङ्गा नहाने चल दी। मुझे रास्ता मालूम नहीं था, इससे मैं भटक

गयी। मैं रास्ता ढूँढ़ रही थी कि मुझे एक बुड्ढी मिली। वह देखने में हिन्दू मालूम होती थी। मैं उसकी बातों में आ गयी। और उसके साथ चल दी। वह मुझे अपने घर ले गयी और दुमंज़िले पर एक कमरे में मुझे बन्द कर दिया। तब मुझे मालूम हुआ कि यह बुड्ढी मुझे वेश्या बनाना चाहती है। मैं बड़ी मुश्किल से चद्दर-उद्दर बाँधकर उस घर से निकल कर भागी और फिर चलती चलती यहाँ तक पहुँच गयी हूँ।

मालती का इस प्रकार कुछ झूठा और कुछ सच्चा परिचय सुनकर गृहिणी बोली —

तुमने तो कमाल कर दिया। इतनी हिम्मत किसी औरत में होना कठिन है।

मालती—समय पड़ने पर सब आ जाता है। अब मैं तुम्हारी शरण हूँ। तुम्हारा चौका-बर्तन सब कर दिया करूँगी—बस मुझे खाना और कपड़ा दे दिया करना। यहीं पड़ी रहूँगी।

गृहिणी—बात तो ठीक है। लेकिन अगर मैं तुमको रख लूँ तो जात-बिरादरीवाले मेरे यहाँ पानी भी नहीं पियेंगे।

मालती—तो फिर मुझे यहाँ रात भर ही रहने दो। सुबह होते ही और कहीं चली जाऊँगी।

गृहिणी ने मन में कहा—हूँ! मैं ऐसी बेवकूफ़ नहीं हूँ जो अपने पैर में आप कुल्हाड़ी मारूँ। फिर वह ज़रा ज़ोर से बोली —

मैं तो तुम्हें रख लेती; लेकिन घर के मालिक तो बिल्कुल राज़ी नहीं हैं।

भोजन पाने से मालती में कुछ बल लौट आया था। वह अपना आश्रय ढूँढ़ने के लिये उसी समय चल दी। ढूँढ़ते ढूँढ़ते उसे एक और घर मिला। इस घर के लोगों के मन में इतनी

दया आ गई कि उन्होंने उसे रात भर रहने की आज्ञा दे दी। रात के कोई दस बजे मालती का घूमना समाप्त हुआ और वह इस नये घर में एक टाट का टुकड़ा बिछाकर सो गयी।

सुबह उठते ही गृहिणी ने मालती को बिदा किया। मालती फिर अपने आश्रय की खोज में चली। सारा दिन घूमी; किन्तु कहीं स्थान न मिला। समाज के भय से किसी ने उसे आश्रय न दिया। किसी ने कुछ बहाना किया, किसी ने कुछ। किसी भी हिन्दू के हृदय में इतना साहस न हुआ कि समाज और जाति का विरोध करके मालती को शरण देता—और मालती हिन्दू को छोड़कर किसी दूसरे के यहाँ रहना नहीं चाहती थी। शाम हो गई। पेड़ों पर की चिड़ियाँ सब अपने अपने बसेरे पर जाने लगीं, किन्तु मालती कहाँ जाय! चलते चलते उसके पैरों में छाले पड़ गये। एक छाला कंकड़ से घिसकर छिल भी गया, जिसके दर्द से व्याकुल होकर मालती वहीं ज़मीन पर गिर पड़ी। सारे शरीर में दर्द हो रहा था। मालती कराहने लगी और कराहते ही कराहते सो गयी। अचानक उसे भास हुआ, मानो वह चल रही है। मालती ने आँखे खोलकर देखा, दो आदमी उसे अपने कंधों पर उठाये लिये जा रहे हैं। दुख सहते सहते और आफतों का सामना करते करते मालती का साहस बढ़ गया था। इसी से उसकी घिग्घी नहीं बँधी और वह पड़ी पड़ी छुट-कारे का उपाय सोचने लगी। उसी समय उसने सुना कि दोनों में से एक आदमी बोला—

अजी, अब तो ख़ूब इनाम मिलेगा। देखो, बेईमानी मत करना। आधा ज़रूर देना।

दूसरे आदमी ने उत्तर दिया—मैंने कभी तुम्हें धोखा दिया है। करीब करीब रोज़ ही हम लोग एक ख़ूबसूरत औरत ढूँढ़-

कर मालिक को देते हैं और जो कुछ इनाम मिलता है उसे बिल्कुल आधा आधा बांट लेते हैं। तुमने कभी देखा कि मैं ने तुम्हें कम दिया।

प० आदमी—लो, तुम तो ज़रा सी बात का बुरा मान गये। मैं तो हँस रहा था।

मालती ने दोनों की बातें सुनी और उसके शरीर में एक कँपकँपी फैल गई। उसके काँपने को देखकर दूसरे आदमी ने कहा—

अब यह औरत जागनेवाली मालूम होती है।

प० आदमी—अच्छी बात है। ज़रा सा क्लोरोफ़ार्म सुँघा दो। सारा झगड़ा मिट जायगा।

मालती अभी सोचने भी नहीं पायी थी कि क्या करना चाहिये, उसी समय दोनों आदमी रुके और उसे ज़मीन पर लिटा दिया। भागने का और कोई उपाय न देखकर मालती सोती बन गई। इतने में एक आदमी ने क्लोरोफ़ार्म की शीशी लाकर उसकी नाक में अड़ा दी। मालती ने अपनी सांस रोक ली। थोड़ी देर बाद उस आदमी ने शीशी हटाकर कहा—

अब यह बिल्कुल बेहोश हो गई। कल शाम से पहले इसे होश नहीं आ सकता। आओ, तब तक हम दोनों भी सो लें। दोनों आदमी वहीं ज़मीन पर लेटने की तैयारी करने लगे और थोड़ी देर में लेटकर खुर्राटें भरने लगे। उनका खुर्राटा सुनकर मालती ने धीरे से आंखें खोलीं। फिर अपने चारों तरफ़ देखने लगी। क्लोरोफ़ार्म की शीशी वहीं पड़ी थी। मालती ने शीशी उठा ली और बारी बारी से दोनों आदमियों के सामने कर दी। वह बहुत देर तक दोनों को शीशी सुँघाती रही, जिससे वे बहुत देर तक बेहोश रहें। थोड़ी देर बाद उन आदमियों की सांस बहुत धीरे

धीरे आने लगी। मालती ने शीशी ले ली और फिर जिधर से ये लोग उसे लाये थे उधर ही लौटने लगी। अभी रात का अँधेरा दूर नहीं हुआ था। मालती उसी हलके अँधेरे में जल्दी-जल्दी जा रही थी; क्योंकि उसे भय था कि कहीं वे दोनों आदमी आते न हों।

सुबह होते होते उसे वही गाँव दिखलाई पड़ने लगा, जहाँ रात को वह सोयी थी। मालती के मन में आया कि वहाँ जाकर फिर आश्रय पाने के लिये प्रार्थना करें; किन्तु फिर उसने मन ही मन कहा—क्या फ़ायदा। इतनी तो प्रार्थना की। अब मालूम होता है, उन दुष्टों से तो रक्षा हो गयी। और नहीं तो फिर मैं उस बुड्ढी के ही यहाँ चली जाऊँगी। जब रहना ही है तो फिर उन लोगों के पास क्यों न रहूँ जो मुझे सिर-आंखों पर बैठालने को तैयार हैं।

अचानक मालती को ध्यान आया कि वह बुड्ढी के यहाँ जायेगी कैसे—वह रास्ता तो जानती ही नहीं। वह सोचती जाती थी और सीधी सड़क पर पैर बढ़ाये चलती जा रही थी। चलते-चलते एक चौराहा मिला। अब यहाँ वह न समझ सकी कि किस रास्ते पर जाना चाहिये। हताश होकर वह वहीं बैठ गई और ईश्वर से सहायता माँगने लगी। कभी रोती, कभी दुःखी होती और कभी अपने ही ऊपर झुँझलाती। इसी प्रकार कितनी देर हो गई, इसका उसे कुछ ध्यान ही नहीं रहा। एकाएक उसे दूर से एक पथिक आता हुआ दिखाई पड़ा। वह बड़े ध्यान से उधर ही देखने लगी। पथिक और पास आ गया। मालती ने देखा कि पथिक खद्दर के कपड़े पहने हुए है। पथिक का स्वस्थ बलिष्ठ शरीर, मुँह पर छाया हुआ सौम्य भाव देखकर मालती को सहायता पाने की कुछ आशा हुई। पथिक जब बिल्कुल पास आ गया

तब मालती उठकर खड़ी हो गई और नमस्कार किया। मालती को देखकर पथिक ने कहा—तुम कौन हो? यहाँ क्यों खड़ी हो?

मालती—मैं गोविन्दपुर जाना चाहती हूँ लेकिन रास्ता नहीं मालूम, इसी से खड़ी हूँ।

पथिक—तुम्हारे साथ के लोग कहाँ गये?

मालती—मेरे साथ कोई नहीं था। मैं अकेली ही थी। पथिक ने एक स्थिर दृष्टि से मालती की तरफ़ देखा। फिर थोड़ी देर कुछ सोचकर कहा—अच्छा, चलो, मैं तुम्हें पहुँचा दूँगा।

डूबते हुए को तिनके का सहारा मिला। मालती पथिक के पीछे पीछे चलने लगी। मालती सोचती जाती थी—तो फिर क्या बुड्ढी के ही घर जाऊँ। वहाँ नहीं जाऊँगी तो फिर जाऊँ कहा? मेरे लिये और कहाँ ठौर है! मैंने नौकरी करनी चाही; किन्तु किसी हिन्दू के यहाँ वह भी न मिली। सब अपना ही भला सोचते हैं। जब हिन्दू समाज को मेरी परवाह नहीं है तो मैं ही क्यों उसके पीछे मरूँ? मेरा अब इस दुनिया में कौन है?

उसी समय उसे महेश का ध्यान आया। वह फिर सोचने लगी—

हाँ। मैं उनको अपना जानती थी। मेरे ही पीछे मेरी बहन का सुख छिना। फिर मैं भी उस सुख को लेकर बहुत दिन न रह सकी। उन्होंने मुझे छोड़ दिया। छोड़ दो! शौक से छोड़ दो!! लेकिन मैं तुम्हें नहीं भुला सकती।

तुम मुझ से न बोलते—बात न करते—लेकिन मेरी आँखों के सामने बने तो रहते। मैं तुम्हें सिर्फ़ देखना चाहती थी।

.....हाँ, मधुपुर जा सकती हूँ। लेकिन क्या मालूम तुम वहाँ होगे भी या नहीं। हाय भगवन्! तुमने मेरे भाग्य में और क्या क्या झेलने को लिखा है.........।

······ऊंह······। नहीं। उन्होंने मुझे छोड़ा, तो मैं भी अब उन्हें भुलाने की कोशिश करूँगी। हिन्दू-समाज ने मुझे ऐसा तङ्ग किया, मैं भी अब उससे बदला लूँगी। उसका तहस-नहस करूँगी। चुन-चुनकर हिन्दुओं को अपने जाल में फसाऊँगी। मैं बुड्ढी के यहाँ जाऊँगी—मुसलमान बनूँगी—वेश्या बनूँगी। तब इन ढपोरशंखियों को मज़ा चखाऊँगी।

पथिक चुपचाप आगे चलता जाता था और कभी कभी पीछे घूमकर देख लेता था कि कहीं मालती बहुत दूर तो नहीं रह गयी। बीच में यदि कोई ज़रूरत पड़ती तो वह एक-आध बात कर लेता था, नहीं तो अधिकतर चुपचाप ही चला जाता। मालती भी चुपचाप उसके पीछे चल रही थी। इस प्रकार कोई पाँच घण्टे बीते होंगे कि मालती को बुड्ढी का घर दिखाई पड़ा। वह ठीक से पहचान न सकी। उत्सुक होकर बड़े ध्यान से उस घर की तरफ़ देखने लगी। उसने देखा, वही खिड़की है जिससे मालती बाहर निकली थी। वही पेड़ था, जिससे वह नीचे उतरी थी। उस दिन मालती उस घर से निकल भागने के लिये व्याकुल थी-आज वह उसी घर में जाने के लिये व्याकुल होने लगी। उसने एक बार पीछे घूमकर देखा कि वह दोनों आदमी तो पीछे नहीं आ रहे हैं जिन्हें वह क्लोरोफार्म सुँघा आयी थी। मालती और तेज़ी से चलने लगी। और कोई एक क्षण में बुड्ढी के मकान के दरवाज़े पर पहुँचकर खड़ी हो गयी। पथिक अभी तक आगे चला जा रहा था। उसने घूमकर देखा कि मालती खड़ी है। उसने लौटते हुए कहा—-आती क्यों नहीं, क्या थक गई?

मालती दरवाज़े पर खड़ी होकर बोली—

नहीं, अब मेरा घर आ गया।

पथिक पास पहुँचकर बोला—

यह घर तो एक वेश्या का है।

मालती के मुँह का रंग कुछ फीका पड़ गया; किन्तु अपने भावों को बलपूर्वक रोककर वह बोली—यही मेरा घर है।

पथिक की तीव्र दृष्टि से मालती के मुँह का चढ़ाव-उतार छिप न सका। इतने में अपने दरवाज़े पर बोलचाल सुनकर बुड्ढो ने ऊपर से झांका और मालती को पहचानते ही जल्दी जल्दी नीचे उतरने लगी।

मालती के विषय में विशेष हाल जानने की इच्छा से पथिक बोला—अच्छा, अगर तुम्हारा घर है तो फिर किसी को बुलाओ, जिसके हाथों में तुम्हें सौंपकर मैं भी निश्चिन्त हो जाऊँ। इतने में आख़िरी सीढ़ी पर पैर रखती हुई बुड्ढी बोली—

नहीं। किसीके बुलाने की ज़रूरत नहीं है। मैं अपने आप आ गई। आ बेटी, तू कहाँ थी······कहते कहते बुड्ढो ने मालती को चिपटा लिया। बुड्ढी को छूते मालती एक कदम पीछे हटी। फिर कुछ सोचकर बुड्ढो के पास चली गई और उसका हाथ पकड़कर ज़ोने पर चढ़ने लगी। चारों तरफ़ से टक्करें खाकर अन्त में मालती को आश्रय मिला। पथिक खड़ा खड़ा सब तीव्र दृष्टि से देख रहा था। मालती के चले जाने पर उसके होठ हिले और उनमें से अस्फुट शब्द सुनाई पड़े—कुछ दाल में काला मालूम होता है। नहीं तो जब बुड्ढी बेटी कह-कर इतने प्यार से आगे बढ़ी थी तो यह पीछे न लौटती। देखूँगा, मैं इसे कहाँ तक ठीक कर सकता हूँ।

पथिक ने अपनी जेब से एक डायरी निकाली और उस पर पेंसिल से कुछ लिखा। जब वह उस डायरी को जेब में रखने

लगा तब उस पर सुनहले अक्षरों में लिखा हुआ दिखाई पड़ा—"स्वयं-सेवक-डायरी"।

१९

महेशचन्द्र और विजयसिंह अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर नियमित समय पर जाकर एक वृक्ष की ओट में छिप गये। किन्तु प्रतिभा को इसकी कुछ खबर नहीं थी। वह अपनी विचार-तरंगों में निमग्न होती हुई उस जंगल के पास पहुँची जहाँ महेश आदि उसकी रास्ता देख रहे थे। जंगल देखकर पहले तो वह कुछ घबड़ाई; किन्तु फिर ईश्वर पर विश्वास कर के वह जंगल में घुस पड़ी। साथ में दो पहरेदार भी थे। इससे प्रतिभा का साहस और बढ़ गया था। कनक अपनी माँ के साथ घोड़े पर बैठकर ऊँघ रही थी। एकाएक "ठहरो! घोड़े रोको" की आवाज़ सुनकर वह चौंक गई। साथ ही महेशचन्द्र ने अपने आठ साथियों के साथ आकर प्रतिभा आदि को घेर लिया। डाकुओं ने सब से पहले पहरेदारों पर हमला किया। पहरेदारों ने थोड़ी देर अपने बचाव का प्रयत्न किया। फिर मौका पाकर दोनों अपनी जान लेकर भाग गये। डाकुओं का उद्देश तो केवल प्रतिभा को पकड़ने का था। अतएव उन पहरेदारों के भागने में कोई विशेष अड़चन न पड़ी। प्रतिभा को अकेली देखकर विजयसिंह आगे बढ़े और नक़ाब डाले हुए बोले—अगर अपनी जान बचाना चाहते हो तो अपने पास का सारा रुपया-पैसा रख दो।

अचानक अपने को विपत्ति की घटा में घिरा हुआ देखकर

प्रतिभा का हृदय बैठा जा रहा था। उसके मन में आया कि इन डाकुओं के सामने वह अपना भेद बता दे। शायद स्त्री जानकर डाकू उस पर कुछ दया करें। किन्तु दूसरे ही क्षण उसे ध्यान आया कि अपना भेद प्रगट करने में तो और भी विपत्ति की सम्भावना है। डाकुओं के कट्टर हृदय में स्त्रियों का क्या विचार!

प्रतिभा को चुप देखकर विजयसिंह फिर बोले—चुप होने से काम नहीं चलेगा। पैसे नहीं दोगे तो मुझे तुम्हारी खाना-तलाशी लेनी पड़ेगी।

अब की बार उसका मौन टूटा। वह बड़ी दीनता से बोली—मैं कहाँ से दूँ—मेरे पास तो कुछ है ही नहीं। विजयसिंह ने एक अन्तर्भेदिनी दृष्टि से देखकर कहा—अच्छी बात है। तो चलो। हमारे साथ चलो। अब दूसरा इन्तज़ाम करना पड़ेगा।

और कोई उपाय न देखकर प्रतिभा और कनक विजयसिंह आदि के साथ चलने लगी। विजयसिंह ने और सब डाकुओं को बिदा कर दिया और केवल वे और महेश प्रतिभा के साथ चलने लगे। उस अन्धकार में अपने आँसू बहाती हुई प्रतिभा चल दी। कनक डर के मारे बारबार थरथरा उठती थी। प्रतिभा सोचती जाती थी—ये डाकू अवश्य मुझे मार डालेंगे। मुझे मरने का कुछ सोच नहीं है। मैं तो अपने इस जीवन से थक गयी हूँ और हँसते-हँसते मृत्यु को गले लगा लूँगी। किन्तु कनक की मेरे पीछे क्या दशा होगी। यदि मरने से पहले मैं एक बार उनके चरणों का दर्शन कर पाती—यदि कनक को उनके हाथों में सौंप पाती.........।

विजयसिंह ने एकाएक बोलकर प्रतिभा की विचारधारा तोड़ दी। विजयसिंह ने कहा—प्रमोद बाबू, अब उतरिये। घर आगया।

प्रतिभा और कनक घोड़े से उतरकर विजयसिंह के साथ चलने लगे। घोड़ों को वहीं पेड़ में बाँधकर सब लोग अन्धेरे में ही मकान में घुस गये। महेशचन्द्र ने दीपक जलाया। प्रतिभा ने उस प्रकाश में महेशचन्द्र को देखा। किन्तु एकाएक आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। वह आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगी—वही मुँह—वैसी ही आँखें—वैसा ही रंग। क्या कभी किसीकी इतनी भी सूरत मिल सकती है! महेशचन्द्र ने दीपक आले में रखकर कहा—प्रमोद बाबू, आप मेरी तरफ़ इतना घूर क्यों रहे हैं?

ओफ़! स्वर भी वही। बिल्कुल वही। तो क्या वे डाकू बन गये! नहीं—यह कभी नहीं हो सकता।

महेशचन्द्र के टोकने से प्रतिभा लज्जित हो गयी और जल्दी से बहाने बनाने लगी—हम लोग थक बहुत गये हैं। इसलिये हम सोना चाहते हैं। यदि आपको बहुत तकलीफ़ न हो तो ज़रा सा इस लड़की के लिये पानी दिलवा दीजिये।

महेश का ध्यान कनक की तरफ़ गया। वह सोचने लगे—मेरी कनक भी अब इतनी बड़ी हो गयी होगी। मेरे ही कारण वह बिचारी अब न मालूम कहाँ की धूल छान रही होगी। हाय! उस बसे-बसाये घर का उजाड़नेवाला मैं ही हूँ।

विजयसिंह महेशचन्द्र की भाव-भंगी देखकर मन ही मन झुँझला रहे थे। महेशचन्द्र के हाथ में एक हलका झिटका देकर बोले—क्या सुना नहीं? इस लड़की के लिये ज़रा सा पानी मँगवा दो और इन लोगों के सोने के लिये कुछ इन्तज़ाम करवा दो। रात बहुत हो गयी है। फिर चलो, हम लोग भी सोयें।

महेश मानो सोते से जगे। अपने भावों को छिपाने के लिये वह बिस्तर और पानी लेने के लिये जल्दी से बाहर चल दियें।

प्रतिभा, जिन महेश के लिये तुम रात-दिन चिन्ता में लगी रहती हो—जिनको एक बार देखने के लिये तुम इतनी उत्कण्ठित रहती हो—अब देखो। आँख भर के देखो। वही महेश तुम्हारे सामने से जा रहे हैं!

महेशचन्द्र बाहर चले तो गये; किन्तु फिर सामान देने के लिये अन्दर आने का साहस वे न कर सके। वे अपने आप ही मन में कहने लगे—

उस लड़की के सामने मुझे क्या हो गया था। उसे देखकर न मालूम क्यों मुझे अपनी कनक की याद आती है। अब उसके सामने जाने का साहस नहीं होता। न मालूम किस समय क्या ऊटपटांग बात निकल जाये और सारा भंडा फूट जाये। इस लड़की के पिता की भी तो सूरत निराली है। मुझे प्रतिभा की जैसी सूरत याद है उससे तो उनकी इतनी सूरत मिलती है कि यदि वे आदमी की पोशाक में न होकर औरत की पोशाक में होते तो मैं उनके सामने हाथ जोड़कर और गिड़गिड़ाकर कहता—प्रतिभा, मेरे अपराधों को क्षमा करो और फिर से आकर मेरे उजड़े हुए घर को बसाओ।

महेशचन्द्र के धड़कते हुए हृदय में इतना साहस न हुआ कि वे फिर से प्रतिभा की कोठरी में जायें। उन्होंने एक डाकू साथी को बुलाकर बिस्तर भेजा। किन्तु फिर उनका मन नहीं माना। वे पानी का गिलास लेकर प्रतिभा की कोठरी की तरफ़ चले। जैसे जैसे कोठरी पास आती जाती थी वैसे ही वैसे उनका चञ्चल मन कोठरी की तरफ़ और जल्दी जल्दी चलने लगता था। किन्तु पैर वैसे ही वैसे और भारी होते जाते थे। कोठरी के दरवाज़े पर पहुँचते पहुँचते उनके पैर इतने भारी हो गये कि लाख प्रयत्न करने पर भी वे उठाये न उठे। लाचार

होकर महेश वहीं दरवाज़े पर खड़े होकर सोचने लगे कि अब क्या करें। अचानक उनका वही डाकू साथी बिस्तर देकर बाहर आने लगा। उसे देखते ही महेश को जान में जान आयी। वे जल्दी से बोले—"भाई, ज़रा यह पानी भी लो। उन लोगों को पकड़ा दो।" डाकू के अन्दर घुसते ही महेश उल्टे पाँव भागे।

महेशचन्द्र और प्रतिभा दोनों की ही वह रात निद्राविहीन आँखों में बीती। दोनों ही अपनी अपनी चिन्ता में निमग्न थे। प्रातःकाल के आगमन की सूचना देनेवाली सुखद वायु के स्पर्श से प्रतिभा को कुछ झपकी सी आगई; किन्तु महेशचन्द्र का नाम सुनते ही वह चौंक पड़ी और उसकी आँखें फिर खुल गयीं। रातवाले चमकीले तारागण इस समय प्रभाहीन होकर संसार के अस्तित्व को दर्शा रहे थे। प्रतिभा ने सुना, कोई पास के ही कमरे में कह रहा था—महेशचन्द्र, तुम्हें क्या हो गया है? रात भर तुम क्या सोचते रहे हो? इन लोगों को देखकर तो तुम्हारी अजीब दशा हो गई है। पागल न हो जाना। छिः!

प्रतिभा ने फिर महेश का कम्पित स्वर सुना—विजयसिंह ऐसा मत कहो। मैं अपने आप ही नहीं समझ पाता कि मुझे क्या हो गया है। प्रमोद बाबू की लड़की को देखकर न मालूम क्यों मुझे अपनी कनक की याद आने लगी। हाय! मैंने उस बिचारी बालिका को कभी खिलाया भी नहीं!

प्रतिभा चौंकी—क्या सचमुच ही मेरा सन्देह ठीक हो गया। हे ईश्वर, यह वही हों! हे देवी महारानी, मैं तुम्हारा प्रसाद चढ़ाऊँगी।

प्रतिभा ने फिर सुना—विजयसिंह कह रहे थे—महेश, तुम्हारा हृदय बहुत कोमल है। डाकू बनकर अपने स्वभाव पर ज़ोर डालने का व्यर्थ प्रयत्न मत करो। कहो तो मैं अब भी दुगने

तिगने दाम देकर प्रमोद बाबू से तुम्हारी ज़मीन्दारी ख़रीद दूँ ।

प्रतिभा को अब कुछ सन्देह न रहा । उसके मन में आया कि दौड़कर उसी समय महेश के पास चली जाये । कितने दिनों की इच्छा आज पूरी हुई । न मालूम कौन सा भाग्य उदय हुआ । प्रतिभा जल्दी से उठ बैठी और दरवाज़े तक गई । किन्तु दूसरे ही क्षण उसे ध्यान आया कि महेश ने उसका तो नाम भी नहीं लिया । कहीं ऐसा न हो कि उसे पहचानकर वह वहाँ से भी कहीं चल दें । तब प्रतिभा क्या करेगी । वह सोचने लगी कि महेश के मन में उसके लिये क्या भाव हैं । उसने थोड़ी देर बाद अपने विचारों से घबड़ाकर ऊपर सिर उठाया । सामने भगवान् अंशुमाली अपने सुनहले वस्त्रों में चमचमा रहे थे । वह हड़बड़ा कर उठी । बाहर महेश घूम रहे थे । विजयसिंह की फटकार सुन-कर उन्होंने रात भर के विकट संग्राम में बड़ी कठिनता से अपने हृदय पर विजय पायी थी । प्रतिभा को बाहर देखकर वह शान्तिपूर्वक उसकी तरफ़ बढ़े ।

× × ×

चार दिन बाद की बात है । प्रमोद बाबू का काम आज समाप्त हो गया था । अतएव अब वे अपनी पुत्री को लेकर अपने गाँव को जानेवाले थे । रुपयों के लिये एक पर्चा अपनी तरफ़ से लिख-कर उन्होंने एक डाकू को बाबू उमाशङ्कर के पास भेजा था । विजयसिंह ने प्रमोद बाबू को तब तक के लिये रोक लिया था जब तक उनका डाकू सुरक्षित न लौट आये । आज वह डाकू रुपया लेकर कुशलपूर्वक लौट आया । इसलिये प्रतिभा ने भी कल चल देने के लिये निश्चय कर लिया । इन चार ही दिनों में प्रमोद बाबू और महेशचन्द्र में इतना मेल हो गया कि आँखों पर विश्वास ही नहीं होता कि चार दिन पहले यह दोनों आपस में

पूर्ण रूप से अपरिचित थे। आज अन्तिम दिन दोनों मित्र जङ्गल के एक एकान्त स्थान में बातें कर रहे हैं। कनक घर में विजयसिंह से इधर-उधर की गप्पों में लगी हुई है। थोड़ी देर चुप रहकर महेशचन्द्र बोले—

प्रमोद बाबू, अब कल आप चले जायेंगे। इन्हीं तीन-चार दिनों में आप मुझसे इतने हिलमिल गये मानो मैं आपको जन्मजन्मान्तर से जानता हूँ।

प्रमोद बाबू ने कुछ गम्भीरता से कहा—

एक बार आपने कहा था कि अब आपका मन डाकूपने से घबड़ा गया है और अब आपको यहाँ अच्छा भी नहीं लगता। तो चलिये, अब इसे छोड़कर मधुपुर न चले चलिये।

महेश—तुम कारण जानकर भी मुझ से पूछते हो! ज़रा सोचो, जब नयी जगहों पर प्रतिभा की इतनी याद आती है तो फिर अपने उसी पुराने घर में मेरा क्या हाल होगा? मैंने एक निरपराधिनी को सताया। शायद यह उसीका फल है।

प्रमोद बाबू (प्रतिभा) ने अब अपनी इच्छा पूरी करने का ठीक अवसर देखा। वे बोले—

अच्छा, अब एक बात बताइये। यदि प्रतिभा आपको मिल भी जाय तो क्या आप उसे रक्खेंगे?

महेश कुछ दुःखी स्वर में बोले—तुम अपनेको मेरी जगह रखकर सोच लो कि मैं क्या करूँगा। उसने मेरे ही पीछे घर-द्वार सब छोड़ा। मुझे अगर वह मिल जाये तो मैं उसे अपने सिर-आँखों पर बैठाऊँ। हाय! मेरे ही कारण रानी होकर भी वह भिखारिनी बन गई....।

कहते कहते महेशचन्द्र ने मत्थे पर हाथ रखकर सिर नीचे झुका लिया और ठण्ढी साँसें लेने लगे। उनकी दशा देखकर

प्रतिभा का हृदय विचलित हो गया। उमड़ते हुए आँसुओं को अन्दर ही घोटकर उसने भर्राये हुए कण्ठ से कहा—

आप इतने दुःखी क्यों होते हैं? इसमें कुछ आप का अपराध नहीं है। जो दुःख प्रतिभा के भाग्य में बदा था वह उसे मिला। आप केवल उस भाग्य के एक साधन हो गये। ईश्वर चाहेगा तो आप को प्रतिभा शीघ्र ही मिल जायेगी।

महेश ने अपनी डबडबाई हुई आँखें प्रतिभा के मुँह की तरफ़ उठाकर कहा—

प्रमोद, अपना आख़िरी वाक्य एक बार फिर से कहो। क्या सचमुच ही वह मुझे मिल जायगी? मैंने अपने आप अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारी। अब रक्त की धार बहती देखकर अधीर हो गया हूँ। मैंने कभी नहीं सोचा था कि केवल एक आघात से ऐसी रक्तधार बहेगी। मुझे नहीं मालूम था कि मेरे नीरस व्यवहार से प्रतिभा के हृदय को ऐसी चोट पहुँचेगी। उस समय मेरी आँखें बाहरी रूप की ही खोज में लगी थीं। उन्हें आन्तरिक रूप देखने की फ़ुर्सत न मिली। हाय! मैंने उसे उस समय क्यों न पहचाना!

प्रतिभा बड़ी कठिनता से अभी तक अपने को रोके हुए थी। किन्तु अब और अपने को न सम्हाल सकी। अपने साफ़े के सिरे में मुँह छिपाकर वह रोने लगी। उसके मन में आया कि वह सारा भेद खोलकर महेश के दुःख को शान्त करे; किन्तु फिर कुछ सोचकर होठ तक आये हुए शब्दों को वह पी गई। इतने में महेश बोले—

प्रमोद बाबू, तुम्हारा हृदय तो स्त्रियों से भी ज़्यादा कोमल मालूम होता है जो दूसरों का दुःख सुनने से ही इतना रो पड़े! अच्छा होगा—अब इन बातों को जाने दो। आओ, अपना

वही गीत अब अन्तिम बार सुना दो। मालूम नहीं क्यों, तुम्हारी सूरत—तुम्हारी बातें प्रतिभा से इतनी क्यों मिलती हैं। मुझे प्रतिभा की जितनी बातें याद हैं वे सब तुम में पाता हूँ। जहाँ तक मुझे ध्यान है, तुम्हारा वह गीत भी प्रतिभा अपने कमरे की खिड़की में बैठकर गाया करती थी। उधर से निकलते समय कभी कभी उसके एकाध शब्द मेरे कानों में गूँजने लगते थे। हाय! मैंने अपने सुख के घर में आप ही आग लगा दी.........।

प्रतिभा ने मानो महेश की कुछ बात ही नहीं सुनी। वह बीच ही में बोल पड़ी—कौन सा गीत गाऊँ?

महेश—वही,-"मैं कहाँ रहूँ, मैं कहाँ बसूँ.........।"

प्रतिभा भर्राये हुए स्वर से गाने लगी। गाने का एक एक शब्द मानो उसीके ऊपर चुनचुनकर रक्खा गया हो। उस दुःख-पूर्ण गाने में वह मस्त हो गई। उसकी आँखों से आँसू बह-बहकर गालों पर आने लगे। पेड़ की पत्तियाँ नाचना भूल गईं। पेड़ भी सिर नीचा करके गाना सुनने लगे। महेशचन्द्र चुपचाप बैठे हुए दुःख की प्रतिमूर्ति प्रतिभा को देखने लगे। प्रतिभा गाते गाते रो पड़ी और उसकी हिचकियाँ बँधने लगीं। महेश मानो सोते से जगे। उनके मुँह से अपने आप ही निकल गया—

हाँ, प्रमोद बाबू, यही गीत था। ठीक यही। लेकिन उस समय मुझे यह गीत इतना प्रिय नहीं था जितना कि अब।

मालूम नहीं ये शब्द प्रतिभा के कानों में गये या नहीं; किन्तु पास खड़े हुए वृक्षों ने इन्हें अवश्य सुना और वे अपना सिर धीरे धीरे हिलाकर महेश के कथन का समर्थन करने लगे। मानो उन्होंने भी प्रतिभा का गाना पहले सुना हो।

२०

कोई अर्द्धरात्रि का समय है। सब प्राणी दिन भर के परिश्रम से थककर निद्रा में निमग्न हैं। उन्हें निशानाथ काले बादलों की ओट से झाँकने लगे। ऐसे समय में यह कौन व्यक्ति अपनी नींद छोड़कर जल्दी जल्दी साइकिल दौड़ाये चला जा रहा है। अवश्य इसमें कुछ गूढ़ भेद है। चलिये पाठक, ज़रा हम लोग भी इस व्यक्ति के पीछे पीछे चलकर कुछ हाल जानने की कोशिश करें। लीजिये, रात्रि के इस सन्नाटे को भेदती हुई गाने की यह मधुर ध्वनि कहाँ से आ रही है? कण्ठ किसी स्त्री का मालूम होता है। शायद सामनेवाले दुमंज़िले मकान में कोई स्त्री रात्रि की नीरवता को दूर करने का प्रयत्न कर रही है। लीजिये, साइकिलवाला व्यक्ति भी इसी मकान के पास जाकर रुका। मकान की खिड़कियों से छनकर प्रकाश उस व्यक्ति के मुँह पर पड़ा। अरे, यह तो कोई पहचाना हुआ सा मालूम होता है। लेकिन कुछ ठीक से याद नहीं आता। चलिये, ज़रा जल्दी से इस युवक के पीछे हो लीजिये। वह साइकिल दीवाल के सहारे खड़ी करके ज़ीने पर चढ़ रहा है। युवक ऊपर जाकर सामनेवाले कमरे में फ़र्श पर बैठ गया। उसके सामने ही थोड़ी दूर पर बैठी हुई और अपने अनुपम सौन्दर्य्य की प्रभा से सारे कमरे को जगमगाती हुई यह कौन स्त्री बैठी है? इसका भी चेहरा कुछ कुछ पहचाना हुआ सा मालूम होता है। अरे, यह दरवाज़ा खोलकर कौन बुड्ढी अन्दर आई? बुड्ढी पान-इलायची की तश्तरी युवक के आगे रखकर बाहर जाने लगी। ओह, याद आया। यह तो वही बुड्ढी है और युवक के सामने बैठी हुई स्त्री• क्या मालती है? मालती का साज-शृङ्गार देखकर तो वह

वेश्या मालूम होती है। तो क्या वह अन्त में वेश्या हो गई !

मालती की सूरत में अब कितना ज़मीन-आसमान का अन्तर हो गया है। मुसलमानी पोशाक में तो वह अब पहचानी ही नहीं जाती। ढीला-ढीला पायजामा उसे ऐसा फबता है मानो वह जन्म से ही पहनती आई है। कन्धे पर पड़े हुए ज़री के काम से लदे हुए महीन रेशमी दुपट्टे के अन्दर से उसके बहुमूल्य गहने चमककर अन्धकार को दूर करने में लैम्प को सहायता पहुँचा रहे हैं। मालती ने तश्तरी में से दो पान उठाकर युवक को दिये। सारंगीवाला अपनी सारंगी के कान ऐंठने लगा। युवक के आग्रह करने पर मालती ने—जो अब मालतीबाई हो गई थी—गाना आरम्भ किया—

"ये दुनिया एक मुसाफ़िरखाना
न मनवा अटकाइये......"

कण्ठ का मधुर स्वर कमरे में गूँज गया। सारंगी सिसकने लगी। तबला ठुमकने लगा। युवक के मुँह पर एक प्रकाश दिखाई दिया; किन्तु दूसरे ही क्षण गायब हो गया। मालती फिर गाने लगी—

"चुन चुन माटी महल बनायो लोग कहें घर मेरा
न घर मेरा न घर तेरा चिड़िया रैन बसेरा"

गाते गाते मालती का कण्ठ भर आया, जो युवक की तीक्ष्ण दृष्टि तथा एकाग्र कानों से न छिप सका। सारंगी ने अपने भीषण चीत्कार से मालती का ध्यान अपनी ओर खींचा। मालती फिर गाने चली। किन्तु उसी समय युवक ने दौड़कर सारंगीवाले का हाथ पकड़ लिया। सारंगी रुक गई। तबला भी अपना अट्टहास भूल गया और चकित होकर युवक की तरफ़ देखने लगा। मालती ने घूमकर देखा कि युवक अपने करुणापूर्ण

नेत्रों से मालती से गाना बन्द करने की प्रार्थना कर रहा है। युवक की आँखों में कुछ ऐसी ज्योति थी कि मालती उसकी प्रार्थना टाल न सकी। उसने तबलेवाले और सारंगीवाले से कमरे से बाहर जाने के लिये कह दिया। कमरा खाली होने पर युवक बोला—मालतीबाई, तुम ऐसा गीत क्यों गाती हो?

मालती—क्यों? क्या ऐसा गीत तुम्हें अच्छा नहीं लगता।

युवक—नहीं। बाई लोगों को ऐसे गीत नहीं गाने चाहियें। ये तो योगियों के गीत हैं। अच्छा, तुम्हीं बताओ, क्या तुम विश्वास करती हो कि दुनियाँ एक मुसाफ़िरखाना ही है—बस!

मालती—यह तो गीत था। जो चाहो गा डालो। गाने में क्या?

युवक ने, जो अभी तक मालती के मुँह के रङ्ग का चढ़ाव-उतार बहुत ध्यान से देख रहा था, देखा कि बोलते बोलते मालती का कण्ठस्वर कुछ भारी हो गया। युवक समझ न सका कि होठों पर हँसी और आँखों में आँसू—इससे क्या मतलब! उसने मन में कहा—तो क्या मेरा सन्देह सच है? क्या इसे अपने काम से घृणा हो गई है और दूसरा उपाय न देखकर इसे ज़बरदस्ती यह काम करना पड़ रहा है? अगर यही है तो फिर मैंने भी अपना कर्तव्य निश्चय कर लिया।

युवक ऊपरी आतुरता दिखाकर बोला—

मुझे बताओ मालतीबाई, तुम रोती क्यों हो? मैंने कई बार देखा है कि तुम अपनी आँखों के पानी को अपनी सूखी हँसी से ढँकना चाहती हो। बताओ, तुम्हें क्या दुःख है? मैं उसे दूर करने की कोशिश करूँगा। ज़रूर तुम्हारे जीवन में कोई भारी रहस्य है। बताओ, तुम कौन हो? आज इसे जाने बिना मैं नहीं टलूँगा।

मालती—बाबूजी, जब मैं वेश्या बनी थी तब सब से पहले आप आये थे और तब भी आपका यही प्रश्न था। मैं उसे आज तक बराबर टालती आई हूँ; किन्तु अब न टालूँगी। अच्छा, सुनिये। मेरा जी सचमुच में दुनिया से घबड़ा गया। मुझे अब इस दुनिया में बिलकुल अच्छा नहीं लगता। आप मेरे जीवन का रहस्य जानना चाहते हैं। वह बड़ा दुःखमय है। लेकिन आप मानते ही नहीं तो सुनिये। मै हूँ.................मैं.........मैं.........।

अचानक पासवाला दरवाज़ा खोलकर वही बुड्ढी पान-इलायची लेकर कमरे में आई। किन्तु इस बार जाने से पहले उसने बड़ी कठोर दृष्टि से मालती की तरफ़ देखा। युवक ने भी चुपके से उस दृष्टि को देखा। फिर देखा कि मालती सहम गई है। बुड्ढी के चले जाने पर युवक बोला—मालतीबाई, हाँ अब कहो।

मालती, जो समझती थी कि युवक ने कुछ नहीं देखा, बोली—लीजिये बाबू साहब, आप भी क्या पूछते हैं! जो मैं हूँ वह तो देखते ही हैं।

युवक—नहीं, मेरी बात हँसी में मत उड़ाओ। सच बताओ। क्या तुम्हें दुनिया अच्छी नहीं लगती?

मालती कुछ मुस्कराने की चेष्टा करती हुई बोली—लीजिये। अगर मुझे दुनिया अच्छी न लगती होती तो मैं इसमें इतना फँसती क्यों?

युवक समझ गया कि अब बुड्ढी की छिपी हुई घुड़की पाकर मालती कुछ नहीं बतायेगी। और पूछना फ़िज़ूल। इसलिये थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करके युवक बिदा हो गया। नीचे आकर उसने अपनी जेब से एक डायरी निकाली और उस में लिखा—"कार्य्य निश्चय हो गया। अब बस उसे पूरा करने को समय ढूँढ़ना है।" उसने डायरी को जेब में रक्खा। इस समय

फिर डायरी के ऊपर लिखे हुए अक्षर चमचमा उठे—"स्वयं-सेवक-डायरी।"

ओह ! याद आया—यह वही युवक है जो भटकती हुई मालती को बुड्ढी के घर तक लाया था ; किन्तु तब यह अपनी सादी पोशाक में था और अब पक्का फैशनेबल हो गया है—तभी तो ठीक से पहचाना नहीं गया। सूरत कुछ परिचित तो ज़रूर मालूम हुई थी।

मालती बाबू को बिदा कर के अभी बैठी ही थी कि नौकर ने आकर एक नये बाबू के आने की सूचना दी। मालती ने नये बाबू को बैठालने की आज्ञा दी। फिर श्रृंगार करने के लिये पास-वाले कमरे में चली गई। बड़े शीशे के सामने खड़ी होकर वह अपने बाल सम्हाल रही थी कि हठात् उसकी दृष्टि शीशे में चमकती हुई अपनी परछाँही पर पड़ी। अपनी रूपछटा देखकर वह स्वयं बड़बड़ाने लगी—

अहा ! कितना सुन्दर रूप है ! क्या सचमुच ही यह मेरी परछाँही है ? तब भी यही रूप था; किन्तु तब सब लोग इसे पैरों से ठुकराते थे और अब बड़े से बड़ा इसके लिये अनायास ही मेरे पास दौड़ आता है। मैंने हिन्दू-समाज को व्यर्थ ही दोष दिया। यदि वह मुझे दुत्करता नहीं—मुझे अपने पैरों के नीचे रौंदता नहीं, तो आज मुझे यह सम्मान कहाँ से मिलता ? धन्य है समाज ! देखने में तू कड़ुआ है; लेकिन फल कितना मीठा देता है। छिः ! मैं भी कैसी मूर्ख थी कि तेरा आशय न समझ सकी और वेश्यावृत्ति को घृणित समझकर व्यर्थ ही उस रात को भूखी-प्यासी उतनी दूर भाग गयी थी। मैं अब बहुत आराम से हूँ; किन्तु फिर भी न मालूम सुखी क्यों नहीं हो पाती ! महेश, महेश, क्या अब इस जीवन में तुम्हें एक बार भी नहीं देख

पाऊँगी ! महेश............ऊँह ! जाने दो। अब उन बातों को नहीं सोचूँगी। अभी तक उनको नहीं भुला सकी हूँ—देखूँ कब भुला सकूँगी। अब उन्हें भुलाने की जी-जान से चेष्टा करूँगी......।

शीशे में किसीकी परछाँही देखकर मालती चुप हो गयी। बुड्ढी ने आकर कहा—मालती, तुम्हारे मिजाज का ही कुछ पता नहीं चलता। अगर ऐसे रहोगी तो कितने दिन रोज़ी चलेगी? बाबूजी घण्टों से तुम्हारा इन्तज़ार कर रहे हैं। कहीं घबड़ाकर और जगह न चले जायें।

मालती ने कुछ चिढ़कर उत्तर दिया—जायें तो जाने दो। इन लोगों को नींद भी नहीं आती। रात का एक बज गया और अब इनका सैर-सपाटा शुरू हुआ। बड़ी मुश्किल से एक बला टाली कि दूसरी सिर पर सवार है।

मालती को चिढ़ी हुई देखकर बुड्ढी ने उस समय चुप हो जाना ही उचित समझा।

मालती ने अपने बाल सम्हालकर फिर बड़े अनमने भाव से अपने उसी कमरे में प्रवेश किया। नये बाबू भी वहाँ आ गये थे। थोड़ी देर में फिर संगीत-लहरी से कमरा गूँज उठा। तबला ठनकने लगा, सारंगी झनझना उठी और मालती का सुरीला स्वर कमरे की दीवालों से टकराकर बाहर हवा के साथ धीरे धीरे बहने लगा। हिन्दू-समाज भी चकित होकर अपने कृत्यों का फल आँखें फाड़-फाड़ देखने लगा।

२१

प्रतिभा ने चलते समय महेश से बहुत अनुरोध किया था कि जब तक उसका कोई पत्र न आ जाये तब तक वे कहीं भी जंगल छोड़कर न जायें। महेश ने भी उस अनुरोध को मानने की प्रतिज्ञा कर ली थी और बराबर उसके पत्र की रास्ता देखते थे। प्रतिभा को गये पन्द्रह दिन हो गये; किन्तु अभी तक महेश को एक लाइन भी न मिली। महेश धीरे धीरे निराश होने लगे; परन्तु उस निराशा में भी आशा की एक क्षीण ज्योति बराबर चमका करती। इन दिनों महेशचन्द्र की कुछ अद्भुत प्रकृति हो गयी। विजयसिंह के जिन उद्देशों पर वे मुग्ध हो गये थे, अब उन्हीं उद्देशों से उन्हें चिढ़ हो गयी, यहाँ तक कि अब वे विजय-सिंह को भी उस उद्देश-जाल से मुक्त करने की इच्छा करने लगे। दूसरों के उपकार के लिये डाकूवृत्ति स्वीकार करना उन्हें स्वार्थ-पूर्त्ति के लिये ढोंगमात्र मालूम होने लगा। अपने सब डाकू भाइयों से उनका मन खिँच गया—केवल विजयसिंह का भ्रातृप्रेम उन्हें अभी तक उस जंगल में बाँधे था। प्रतिभा के पत्र की प्रतीक्षा के कारण भी वे अभी तक जंगल से नहीं निकल भागे थे। रोज के समान आज भी महेशचन्द्र उसी पेड़ के नीचे चुपचाप बैठे हुए थे, जहाँ पन्द्रह दिन पहले प्रतिभा उनसे बिदा हुई थी। इस समय भी वे प्रतिभा के ही बारे में सोच रहे थे। एकाएक किसी ने पीछे से आकर उनके कंधों पर हाथ रक्खा। स्पर्श होते ही उन्होंने चौंककर पीछे देखा कि विजयसिंह पास खड़े हुए हैं। विजयसिंह के गम्भीर मुँह पर हलकी मुस्कराहट थी और आँखों में दुःख भरा था। विजयसिंह की यह विचित्र भाव-भंगी देखकर महेश चकित हो गये। विजयसिंह ने अपने भर्राये हुए कण्ठ को

साफ़ करके कहा—भाई महेश, अब कब तक तुम्हारी यह दशा रहेगी ? हमारा जंगल तुम्हारे लिये जेलखाना नहीं है। तुम बिल्कुल स्वतन्त्र हो। जहाँ चाहो चले जाओ। जहाँ तुम्हारा मन लगे—जहाँ तुम्हें प्रसन्नता मिले, वहाँ चले जाओ। तुम्हारा यह उदास मुँह अब नहीं देखा जाता....। महेशचन्द्र बीच ही में बोल पड़े—विजय, तुम भी कैसी बातें करते हो। जहाँ तुम हो वहाँ अगर मेरा मन नहीं लगेगा तो फिर कहाँ लगेगा। यदि तुम मेरे इस जीवन को पूर्ण रूप से सुखमय बनाना चाहते हो तो चलो। हम दोनों भाई अब डाकूपन को और इस जंगल को छोड़कर दूसरी जगह चलें।

विजय ने कुछ दृढ़ता से कहा—क्या कहते हो महेश ! अब यह डाकूपन मेरे इस जीवन में नहीं छूट सकता। इसके छूटने का केवल एक उपाय है, वह भी तुम से छिपा नहीं है। उस उपाय को कार्य्यरूप में परिणत करने की अब कोई आशा भी नहीं है। होगा—इन बातों को जाने दो। अब काम की बात सुनो।

महेश ने उत्सुकता-पूर्वक विजयसिंह के मुँह की तरफ़ देखा। विजयसिंह जेब से एक लिफ़ाफ़ा निकालकर महेशचन्द्र की तरफ बढ़ाते हुए बोले—

लो, मधुपुर से तुम्हारे लिये खत लेकर एक आदमी आया है और कहता है कि प्रमोद बाबू ने तुम्हें बहुत जल्दी मधुपुर में बुलाया है। महेशचन्द्र से कुछ उत्तर देते न बना। उन्होंने बड़ी व्यग्रता से विजयसिंह के हाथ से लिफ़ाफ़ा ले लिया। इतने दिनों बाद आज आशा पूरी हुई। उनकी आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं। महेशचन्द्र पढ़ने लगे—

ओ३म्

मधुपुर

प्रिय महाशय,

कई कारणों से पत्र भेजने में देर हो गई। क्षमा कीजियेगा। यहाँ आकर ज़मीन्दारी का काम बेतरह मेरे सिर पर लद गया। आप बताते थे कि आप पहले कहीं के ज़मीन्दार थे। अतएव आप को अवश्य ही इस विषय में बहुत अनुभव होगा। कृपया कुछ दिनों के लिये यहाँ आकर मेरी सहायता कीजिये। यह आदमी कुछ कपड़े भी आपको देगा। यदि इच्छा हो तो उन्हें ही पहन-कर आइयेगा। अपने भाई विजयसिंह से प्रणाम कहियेगा।

आपका—प्रमोद

पुनश्च—ये कपड़े पहले ज़मीन्दार साहब के हैं। यदि उन्हें पहनने में आपको कुछ आपत्ति हो तो आप प्रसन्नता-पूर्वक अपने ही कपड़ों में आ सकते हैं। यहाँ आप पर कोई आफ़त नहीं आयेगी—यह निश्चय-पूर्वक जानिये।

प्रमोद

महेशचन्द्र ने पत्र समाप्त कर विजयसिंह की तरफ़ देखा। उस समय विजयसिंह का भी कठोर हृदय पसीज गया, जिसकी भाप-स्वरूप उनकी आँखों में कुछ अश्रुविन्दु छलछला आये। महेश को अपनी तरफ़ देखते देखकर अपने भाव छिपाने के लिये विजयसिंह ने हँसने की चेष्टा की; किन्तु उसी समय उनकी आँख से दो बूंद टपककर पृथ्वी पर गिर पड़े। महेशचन्द्र ने पूछा—

बताइये, इस पत्र के उत्तर में आप क्या कहते हैं ?

विजय—मैं क्या कहूँगा। प्रमोद बाबू ने तुम्हें बुलाया है। तुम जाओ। लेकिन वहाँ जाकर मुझे बिल्कुल न भूल जाना।

वहाँ के सुखों में इतने लवलीन मत हो जाना जो यहाँ लौटने का नाम भी न लो।

महेश ने विजयसिंह की भरी हुई आँखों पर एक दबी हुई दृष्टि डाली। फिर बोले—नहीं, मैं नहीं जाऊँगा।

विजयसिंह ने इतनी देर में अपने को सम्हाल लिया। वे दृढ़ता से बोले—महेश, तुम क्या पागल हो गये हो? यहाँ तुम्हारा मन भी इन दिनों नहीं लगता है। ज़रा बाहर हो आओगे तब तुम्हारा मन फिर से हराभरा हो जायगा।

महेश ने एक क्षण तक विजयसिंह के मुँह की तरफ़ देखा। फिर बड़ी आतुरता से बोले—सच बताओ विजय, क्या मेरे जाने से तुम्हें बुरा नहीं लगेगा?

विजयसिंह ने अवज्ञा की हँसी हँसते हुए कहा—इतने दिनों साथ रहकर भी तुमने डाकुओं को नहीं पहचाना! डाकुओं के हृदय में ऐसे भावों के लिये भला कहाँ जगह मिल सकती है! हम लोगों का हृदय इतना कोमल नहीं होता। अच्छा। मैं जाता हूँ। तुम भी जल्दी आना। उस आदमी को देर होती है।

विजयसिंह ने जल्दी से मुँह फेरा; और इसके पहले कि महेश कुछ कहें, वे एक तरफ़ को चल दिये। महेश ने ज़रा झुक-कर देखा कि उनकी आँखों से उस समय आँसू बह रहे थे। महेश कुछ क्षणों तक वहीं पर कठपुतली के समान खड़े हो गये। उनके मुँह से फिर अनायास ही निकल पड़ा—

अजीब प्रकृति का मनुष्य है! एक तरफ़ अवज्ञा की ऐसी भीषण हँसी हँसता है और दूसरी तरफ़ छिप-छिप-कर इतना रोता है! समझ में नहीं आता कि क्या करूँ। होगा—मधुपुर जाना ही ठीक है।

महेशचन्द्र जल्दी जल्दी कदम बढ़ाते हुए जंगल में अपने कच्चे मकान की ओर चल दिये। ज़रा सी देर में उनकी पूरी मित्र-मण्डली में खलबली मच गई कि बाबू महेशचन्द्र जा रहे हैं। एक एक डाकू उनसे मिलने के लिये आया; किन्तु विजयसिंह का वहाँ कहीं पता नहीं था। महेश ने समझा कि विजयसिंह आते होंगे। वे जाने के लिये तैयारी करने लगे। वह आदमी अभी तक वहाँ खड़ा था। बाबू महेशचन्द्र ने उसके हाथ से कपड़ों की गठरी ले ली। गठरी में उनका वही सुपरिचित रेशमी सूट था, जिसे उन्होंने बहुत शौक से बनवाया था; किन्तु पहनने से पहले मधुपुर छोड़ देना पड़ा था। पुरानी स्मृति ने उनके मानस-मन्दिर से टकरा उनके सारे शरीर को कँपा दिया। महेश जाने को तैयार हो गये; किन्तु फिर भी विजयसिंह का कहीं पता न चला। महेश ने निराश होकर और डाकू भाइयों से कहा,—भाई, मैं जाता हूँ। चलते समय मैं विजय-भैया से नहीं मिल सका। मालूम नहीं, अब उनसे कब मिल सकूँ। अच्छा, जब वे मिलें तो उनसे मेरा प्रणाम कह देना।

महेशचन्द्र ने सब से प्रणाम किया और जाने के लिये उद्यत हो गये। उसी समय न मालूम कहाँ से विजयसिंह आकर खड़े हो गये। उनको देखते ही महेश गले मिलने के लिये आगे बड़े और बोले—

भैया, तुम कहाँ चले गये थे? मैंने तुम्हें कितना ढूँढ़ा; लेकिन तुम्हारा कहीं भी पता नहीं लगा।

महेश को अपनी तरफ़ बढ़ते देखकर विजयसिंह एक कदम पीछे हटे और धीरे से गम्भीर स्वर में बोले—चलो, मैं तुम्हें इस जंगल के अखीर तक पहुँचा आऊँ।

विजयसिंह का भारी स्वर सुनकर महेश जहाँ के तहाँ खड़े

रह गये और उन्होंने एक सूक्ष्म दृष्टि से देखा कि विजय की आँखें लाल हैं, पलक सूजे हुए हैं और मुँह उतर रहा है।

महेशचन्द्र और विजयसिंह दोनों एक साथ चल दिये; और आदमी उनके पीछे पीछे चलने लगा। महेश और विजय दोनों एक साथ जा रहे थे; किन्तु बोलते एक शब्द नहीं थे। दोनों मानो मौन-व्रतावलम्बी हो गये थे; और समय मानों दोहरे पंखों से उड़ा जा रहा था। तीनों मनुष्य चलते चलते बन के सिरे पर पहुँचे। विजयसिंह खड़े हो गये। महेश ने पूछा—

चलते क्यों नहीं ?

विजय—अब आगे नहीं जाऊँगा।

महेश—मैं तो सोचता था कि तुम थोड़ी दूर तक तो कम से कम साथ दोगे; लेकिन तुमने अभी से साथ छोड़ दिया।

विजयसिंह ने मानो कुछ सुना ही नहीं। वे बोले—भाई, मुझसे जो कुछ भूल-चूक हुई हो, क्षमा करना।

महेश—तुम भी कैसी बातें करते हो ? तुम से और अपराध ! असम्भव।

विजय—असम्भव कुछ नहीं है। मैं भी तो मनुष्य ही हूँ। न मालूम कितने अपराध हुए होंगे। आज तुम जा रहे हो, इसलिये अब इस अन्तिम बार तुमसे माफी माँगना ठीक समझा।

महेश—तो मैं कुछ हमेशा के लिये थोड़े ही जा रहा हूँ। अभी थोड़े दिनों में फिर लौट आऊँगा।

विजयसिंह की आँखें भीग गईं। उन्होंने सिसकियों को दबाते हुए कहा—अब हमारा तुम्हारा साथ ही नहीं होगा। नहीं मालूम कौन मेरे मन में कह रहा है कि अब तुम यहाँ लौटकर नहीं आओगे।

विजयसिंह ने कहते कहते दोनों हाथों से अपना मुँह ढँक

लिया। उनके हाथों को बलपूर्वक हटाते हुए महेश ने कहा—यह क्या ? रोते क्यों हो ? क्या यही तुम्हारा कठोर हृदय है ?

कहते कहते महेश की भी आँखें सजल हो गयीं।

विजयसिंह ने महेश को कुछ उत्तर न दिया। केवल एक बार उनकी तरफ़ अश्रुपूर्ण आँखों से देखा। फिर अपना सिर महेश के कंधे पर रखकर रोने लगे। कोई एक क्षण भी न बीता होगा कि उन्होंने अपना सिर उठाया और नमस्कार करके जल्दी से जंगल में एक तरफ़ जाकर अदृश्य हो गये।

महेशचन्द्र विजयसिंह की विलक्षण गति देखकर अवाक् हो गये और वहीं पर चुपचाप खड़े हो गये। कोई दस मिनिट इसी प्रकार बीते होंगे कि साथवाले आदमी ने उनका ध्यान भंग किया—बाबूजी, जल्दी चलिये। बहुत दूर जाना है।

महेशचन्द्र मानो सोते से जगे। एक लम्बी सी साँस लेकर उन्होंने कहा—

हाँ, अब चलता ही हूँ।

उन्होंने फिर झुककर जङ्गल को प्रणाम किया और एक सूखी सी पत्ती उठाकर अपनी जेब में रखते हुए बोले—आओ, अब जल्दी जल्दी चलें। आदमी साथ में दो घोड़े लाया था, जिन्हें जङ्गल के सिरे पर बाँध गया था। वह उन घोड़ों को खोलकर ले आया और बोला—हाँ, चलिये।

दोनों अपने अपने घोड़े पर बैठ गये और जोर से एँड़ लगा दी। महेश के कानों में उस समय भी विजयसिंह के वही शब्द गूँज रहे थे—

"न जाने कौन मेरे मन में कह रहा है कि अब तुम लौटकर यहाँ नहीं आओगे।"

२२

प्रातःकाल के कोई नौ बजे होंगे। भगवान् अंशुमाली प्रकृति-देवी की तरफ़ एकटक देख रहे हैं। उनकी किरणें प्रकृतिदेवी के झुके हुए मस्तक से टकराकर चारों तरफ़ बिखर जाती हैं। उन किरणों की चमचमाहट से सारा संसार चमचमा उठा। उसी चमक में मालती ने अपनी शीशे की खिड़की से झाँककर देखा कि एक गाड़ी उसके मकान के सामने आकर खड़ी हो गई। मालती को गाड़ी पहचानने में देर न लगी। वह अपने आप ही चिढ़कर बड़बड़ाने लगी—फिर आ डटे। आदमी हैं कि घनचक्कर, कुछ समझ में नहीं आता। कितनी बार टालने की कोशिश की; किन्तु इन पर कुछ असर ही नहीं होता। और कोई होता तो कभी ऐसी वेश्या के घर झांकने भी नहीं आता। अब मैं किसीसे भी नहीं मिलूँगी—हाँ सिवाय एक के·········महेश—मेरे महेश—इतने में नौकर ने आकर दरवाज़ा खट-खटाया। मालती ने झुँझलाकर पूछा—कौन है ?

नौकर ने डरते डरते कहा—"हुज़ूर, बाबूजी आये हैं"। मालती ने दरवाज़ा खोले बिना ही कहा—जाओ ! उनसे कह दो कि मैं ने आज से अपना यह पेशा छोड़ दिया। इसलिये अब मेरे पास आने का कुछ काम नहीं। नौकर लौट ही रहा था कि बुड्ढी ने हाँफ़ते हाँफ़ते आकर उसे रोका और उसे बाबूजी को सम्हाल-कर बैठालने की आज्ञा देकर कमरे का दरवाज़ा ज़ोर से खट-खटाने लगी। मालती चिढ़ी हुई तो थी ही—बड़े गुस्से में दर-वाज़ा खोलकर एक कोने में जाकर खड़ी हो गयी। बुड्ढी ने घुसते ही कहा—

तुम्हें हो क्या गया है मालती ? कैसी बेवकूफ़ी की बातें करती हो ?

मालती ने अवज्ञा से बुड्ढी की तरफ़ देखा। फिर चुपचाप दूसरी तरफ़ मुँह फेर लिया। बुड्ढी फिर बोली—देखती हूँ, तुम्हारा मिज़ाज़ इन दिनों सातवें आसमान पर चढ़ा रहता है।

मालती एक कठोर दृष्टि से बुड्ढी को सिर से लेकर पैर तक देखने लगी। बुड्ढी फिर कहने लगी—

मुझे क्यों घूरती हो? अगर अपना भला चाहती हो तो चुपचाप चली चलो। बाबूजी कुछ तुम्हारे नौकर नहीं हैं जो तुम्हारे लिये घण्टों बैठे रहें।

मालती ने दृढ़ता से कहा—बाबूजी के बैठने की कोई ज़रूरत नहीं है। मैं उनके पास नहीं जाऊँगी। जाओ कह दो।

बुड्ढी—आख़िर क्यों नहीं जाओगी, मैं भी तो जानूँ......।

मालती बीच ही में बोल पड़ी—मेरी बातें जानने से तुम्हें कुछ मतलब नहीं। मैं बहुत बोलना नहीं चाहती। बस, चुपचाप मेरे कमरे से बाहर चली जाओ।

बुड्ढी की भौंहों में बल पड़ गया। अपना पोपला मुँह चलाती हुई वह बोली—यह हुकूमत किसी और पर चलाना। क्या ख़ूब! मियाँ की जूती मियाँ के सिर! मेरा मकान और मुझे ही घर से बाहर जाने की धमकी!

मालती—तो तुम अपना मकान लेकर रहो, मैं बाबा कहीं और जगह चली जाऊँगी!

बुड्ढी—चला जाना क्या कुछ आसान है? तुम्हारे ऊपर इतना रुपया जो लगाया है, वह वसूल किये बिना क्या छोड़ सकती हूँ।

बड़ी मुश्किल से अपने गुस्से को रोककर मालती बोली—लाओ, हिसाब दिखाओ। तुम्हारा एक पैसा भी अपने ऊपर रखना पाप है।

बुड्ढी ज़रा ताने के स्वर में बोली—ओहो ! ज़रा इन धर्मात्मा को तो कोई देखे ! सत्तर चूहे खाय बिलैया हज को चली !

मालती अब अपने गुस्से को न रोक सकी। वह एकदम भभक उठी—लाख बातों की एक बात यह है कि मुझसे अब ऊपरी दिखावा नहीं हो सकता। लाख कोशिश की; लेकिन सब फ़िज़ूल हुआ। मैंने अपने इस जन्म में केवल एक को जाना है। मैंने इस नरक-कुण्ड में कूदकर उनको भुलाना चाहा था; किन्तु भुला न सकी। मैंने अपने इस नये भेष की शरण में उनसे बदला लेना चाहा था; किन्तु अब बदला लूं किससे ? मुझे इतने दिनों बाद मालूम हुआ कि वह मेरा ऊपरी गुस्सा था। यथार्थ में मेरा मन उनके ही चरणों पर लोटता है। बुड्ढी, मेरे मन को स्वर्ग से घसीटकर इस नरक-कुंड में ढकेलनेवाली तू ही है। लेकिन अब तेरी चाल नहीं चल सकती। मन मेरा है। तेरे कहने से मैं अब उन्हें भुला नहीं सकती और न किसी में फँस ही सकती हूँ।

मालती का शरीर उत्तेजना से कांपने लगा। बुड्ढी अपनी सफ़ेद भौहों के नीचे के गड्ढों से टिमटिमाती हुई लाल आँखें निकालकर मालती की तरफ़ देखने लगी और फिर कुछ बड़बड़ाती हुई कमरे के बाहर हो गयी। बुढ़िया के जाते ही मालती ने कमरे के दरवाज़े अन्दर से बन्द कर लिये और वहीं फर्श पर बैठकर रोने लगी। रोते रोते वह अपने आप ही कहने लगी—

परमात्मन् ! मैंने कौन से ऐसे पाप किये थे जिनका यह फल भोग रही हूँ ? अब इस पाप से मेरी रक्षा करो। मुझे आत्म-बल दो। भगवन् ! मुझे बचाओ...... ।

मालती उठकर सोफे पर चली गई और वहाँ थोड़ी देर तक बैठी बैठी न मालूम क्या सोचने लगी। फिर उसके होंठ अपने आप हिलने लगे—

हाँ, भाग सकती हूँ। आज भी वह खिड़की है, जिससे पहले निकल भागी थी। किन्तु फिर होगा क्या। पहले की तरह फिर लौटना पड़ेगा। जब मैं वेश्या नहीं थी तब तो किसीने मुझे अपने घर में घुसने न दिया, तो फिर अब कौन मेरे लिये दरवाज़े खोल देगा? महेश, महेश, तुम कहाँ हो? आओ। मुझे अपने पास रख लो। तुम्हारे घर में नौकरानी का काम करूँगी; किन्तु किसी प्रकार मुझे इस बुढ़िया के जाल से छुड़ाओ। महेश··· ।

मालती चुप हो गई। थोड़ी देर बाद वह फिर बोली—महेश, तुम्हारे समान मैं निष्ठुर न हो सकी। होना चाहा; पर देखती हूँ वह मेरी शक्ति के बाहर है। तुमने जाकर मेरी एक बार भी ख़बर न ली—बड़ी आसानी से भुला दिया। लेकिन मैं लाख कोशिश करने पर भी तुम्हें न भूल सकी। ईश्वर मुझे इतनी शक्ति दे कि तुम्हारा ही नाम लेती हुई मर सकूं·········।

एकाएक दरवाज़ा खटका, जिसे सुनते ही मालती चौंकी और उठकर दराज़ों से झाँकने लगी। बाहर उन्हीं बाबूजी को देखकर वह झल्ला उठी और बोल पड़ी—आपसे क्या किसीने कहा नहीं कि मैं नही मिलूंगी? बिना इज़ाजत के आप क्यों अन्दर घुसते चले आ रहे हैं?

बाबूजी का स्थिर कण्ठ सुनाई पड़ा—बहन से मिलने के लिये भाई को इज़ाज़त की ज़रूरत नहीं होती। दरवाज़ा खोलो बहन!

'बहन'! कितना मधुर सम्बोधन है—कितना प्रिय—कितना सरस!

मालती ने मन्त्र-मुग्ध के समान दरवाज़ा खोल दिया। बाबूजी अन्दर घुसे। पाठकगण शायद पहचान गये होंगे कि यह और कोई नहीं—वही 'स्वयं-सेवक-डायरी' वाले सज्जन हैं।

बाबूजी ने अन्दर घुसते-घुसते कहा—सच बताओ बहन, क्या तुम अपनी यह वृत्ति छोड़ना चाहती हो ? क्या अब इससे तुम्हारा जी घबड़ा गया है ?

मालती ने ज़रा सा सिर हिलाकर कहा—हाँ, बाबूजी ।

तो फिर तुमने इसे अभी तक छोड़ा क्यों नहीं ?

मालती ने कुछ सिसकते हुए कहा—इस संसार में मेरा कोई भी ऐसा नहीं है, जिसके बल पर मैं इसे छोड़ दूँ । कहाँ भटकती फिरूँगी, इसी भय से अभी तक इसे न छोड़ सकी ।

बाबूजी—बस, यही कारण है या कोई और ?

मालती—बस यही ।

बाबूजी ने अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा—तो फिर कोई चिन्ता नहीं है । और कोई हो न हो ; लेकिन तुम्हारा यह भाई तो है, जिसके बल पर तुम अपनी इस घृणित वृत्ति को पैरों से ठुकरा सकती हो । समाज के भय से तुम्हारा यह भाई अपनी बहन को कुँए में गिरती हुई देखकर भी चुप नहीं रह सकता । या तो वह अपनी बहन को बाहर निकाल लेगा या अपने प्राण भी उसीमें गँवा देगा । तुमने अपना परिचय मुझे कभी नहीं सुनाया ; किन्तु फिर भी मैंने उसे बहुत कुछ मालूम कर लिया है । मैं सब जानता हूँ । अब इस विषैली हवा से जल्दी निकल भागो । चलो, गाड़ी तैयार है ।

मालती ने बाबूजी का बढ़ा हुआ हाथ पकड़ लिया और बोली—भाई, क्या सचमुच ही ईश्वर ने............ ।

बाबूजी बीच ही में बोल पड़े—ठहरो, लाओ, अपने माल-असबाब का सन्दूक दे दो । उसे न हो तो किसी पुण्य-काम में ख़र्च करना । बुड्ढी के लिये यहाँ छोड़ देना बुद्धिमानी नहीं है ।

मालती ने अपने दो सन्दूक दिखाये । बाबूजी ने गाड़ीवालों

को बुलाकर सन्दूक गाड़ी में रखवा दिये। फिर मालती से बोले—चलो बहन!

मालती ने भी उसी स्वर में कहा—चलो भैया।

बुड्ढी के देखते-देखते दोनों धर्म-भाई-बहन को लेकर गाड़ी चल दी।

२३

प्रतिभा के हर्ष की कोई सीमा नहीं; क्योंकि अब उसकी वर्षों की तपस्या सफल होनेवाली थी। महेश का पता लगने से अब अपने ही द्वारा उजाड़े हुए घर को फिर से बसाने की सुन्दर झलक बारबार चमककर उसके हृदय में हलचल मचा देती। किन्तु फिर भी प्रतिभा बिलकुल निश्चिन्त नहीं थी। उसे बराबर यह भय लगा रहता कि महेश की चंचल, असन्तुष्ट प्रकृति अब उन्हें बहकाकर और किसी दूसरी जगह न ले जाय और इस प्रकार बना-बनाया काम बिगाड़ दे। इतने दिनों तक प्रतिभा ने महेश के पास कोई पत्र नहीं भेजा था। इससे यह मतलब नहीं सोचना चाहिये कि वह महेश को भूल गयी थी। नहीं, महेश की याद उसे एक घड़ी को भी नहीं भूली थी। उन्हीं महेश को जल्दी से जल्दी घर बुलाने के उपाय में लगी रहने के कारण ही उसे पत्र भेजने में देरी हो गयी थी। उसने आते ही बाबू उमाशंकर को बुलाने के लिये एक पत्र और एक आदमी भेजा। किन्तु ज़मीन्दार साहब अपनी ज़मीन्दारी के झंझटों के कारण वहाँ शीघ्र न आ सके। प्रतिभा ने पन्द्रह दिनों तक रास्ता देखा। अन्त में हताश होकर उसने

पन्द्रहवें दिन महेश के पास पत्र और आदमी भेजा। प्रतिभा अपनी उसी मर्दानी पोशाक में बाहर के कमरे में चिन्तित बैठी थी कि सहसा बाबू उमाशंकर ने प्रवेश किया। थोड़ी देर तक इधर-उधर की शिष्टाचार की बातें करके प्रतिभा ने मतलब की बात चलायी—आपको अचम्भा होता होगा कि मैंने आते ही आपको क्यों बुला भेजा।

उमा०—हाँ, प्रमोद, मैं तुमसे यह पूँछनेवाला ही था।

प्रतिभा—सब से पहले तो मेरी यह प्रार्थना है कि 'प्रमोद' न कहकर आप मुझे प्रतिभा कहा करिये।

उमाशंकर ने विस्मय से आँखें फाड़ते हुए कहा—हैं! क्या कहा?

प्रतिभा ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया—आप इतने विस्मित क्यों होते हैं? ज़रा धीरज रखिये। सब आपको अभी मालूम हो जायगा।

प्रतिभा ने धीरे धीरे सारा किस्सा सुना दिया कि किस प्रकार प्रमोद बाबू बनकर उसने नौकारी की थी।

प्रतिभा के चुप होते ही बाबू उमाशंकर बोले—तो तुम इस मधुपुर गाँव के सुविख्यात ज़मीन्दार बाबू महेशचन्द्र की स्त्री हो—!

प्रतिभा ने सम्मति-सूचक सिर हिलाया। ज़मीन्दार साहब कुछ देर तक चुप रहे। फिर अपने आप ही बोल पड़े—क्या करूँ! मन में विश्वास ही नहीं होता। कहीं तुम मेरी हँसी तो नहीं उड़ाते?

प्रतिभा ने उसी समय अपनी कमीज़ के अन्दर से एक फोटो निकालकर बाबू उमाशंकर के हाथों में पकड़ा दी और बोली—नहीं विश्वास होता तो प्रमाण उपस्थित है। मैं अपने

पति की फ़ोटो जाते समय ले गयी थी। तब से यह एक घड़ी को भी मुझसे अलग नहीं हुई। यदि आप उनको न पहचानते हों तो इसे पास रहने दीजिये। बहुत सम्भव है, थोड़ी देर में वे भी आते हों, तब आपको मालूम हो जायगा कि जो कुछ मैं कह रही हूँ, वह सच है या झूठ। न मन माने तो आप कनक से भी पूछ सकते हैं।

बाबू उमाशंकर गम्भीर भाव से कुछ सोचने लगे। फिर अपने आप ही बोले—कितने आश्चर्य्य की बात है कि एक स्त्री, और वह भी हिन्दुस्थानी, मेरे साथ इतने दिनों तक पुरुष बनकर रही, और मैं पहचान न पाया! सचमुच आश्चर्य्य है!

प्रतिभा बीच ही में बोल पड़ी—नहीं, आश्चर्य्य की कोई बात नहीं। मनुष्य सब कुछ नहीं समझ सकता। प्रत्येक बात को जान लेना मनुष्य की शक्ति के बाहर है। मनुष्य पहचानने में बहुधा धोखा खाता है। कितनी बार गुण्डे आदि स्त्रियों का भेष रखकर गड़बड़ी मचा देते हैं—स्त्रियों को गायब कर देते हैं और किसी को कानों कान पता नहीं चलता। कितनी ही बार स्त्रियां पुरुषों का भेष धारणकर बड़े से बड़ा काम कर डालती हैं और किसीके कान पर जूं भी नहीं रेंगती।

उमाशंकर ने अविश्वास से भरी हुई एक दृष्टि प्रतिभा के मुँह पर गड़ाई, जो उसकी तीक्ष्ण दृष्टि से छिपी न रह सकी। वह कुछ मुस्कराती हुई बोली—क्यों? क्या अब भी विश्वास नहीं होता? आप तो अख़बार पढ़ने के बहुत शौकीन हैं। अभी हाल ही की बात है—आपने अख़बार में ज़रूर पढ़ा होगा कि एक अंगरेज़ औरत ने फ़ौज़ में नौकरी की और जनरल तक बन गई; किन्तु किसीको ज़रा सा शक तक न हुआ कि वह औरत थी। यह भेद तो उसके मरने के बाद खुला।

उमा०—हाँ, पढ़ा ज़रूर था, तब मैं उन लोगों की बुद्धि पर हँसा था कि एक स्त्री से धोखा खा गये। किन्तु अब देखता हूँ कि मैं उनसे कम बेवकूफ़ नहीं हूँ। कुछ भी हो; लेकिन बात बहुत अचम्भे में डालनेवाली है।

प्रतिभा—अगर अब भी विश्वास न हुआ हो तो कुछ और उदाहरण दिखाऊँ।

उमा०—नहीं, नहीं, सन्देह करने का कोई कारण नहीं है। अब उदाहरणों की कोई ज़रूरत नहीं। जब जीता-जागता उदाहरण सामने खड़ा है, तब फिर और उदाहरणों की क्या ज़रूरत?

बाबू उमाशंकर रुक गये। फिर बोले—हाँ, बताओ, तो तुमने मुझे किस काम के लिये बुलाया?

प्रतिभा—वह भी बताती हूँ। आपको सब हाल तो मालूम हो गया। अब यह बताइये कि क्या करना चाहिये। आपके आने की मैंने बहुत रास्ता देखी थी। किन्तु अन्त में लाचार होकर वहाँ आदमी भेज दिया। शायद वे आज आते ही होंगे। यह मधुपुर गाँव मैं अपने नाम से लेना चाहती हूँ, जिससे वे निःसङ्कोच होकर यहाँ रहें। अब यह बताइये कि उनके ऊपर यह भेद कैसे प्रकट किया जाये?

बाबू उमाशंकर कुछ बोलने ही वाले थे कि नौकर ने महेश के आने की सूचना दी। नौकर अभी लौटने भी नहीं पाया था कि महेश दरवाज़े के अन्दर घुस आये। प्रतिभा और कोई उपाय न देखकर जल्दी से दूसरे दरवाज़े से बाहर निकल गई। महेश ने घुसते ही उसकी ज़रा सी झलक देखी; किन्तु ठीक से पहचान न सके। कनक उस समय अपनी माँ के पास आ रही थी। प्रतिभा उसका हाथ पकड़कर दरवाज़े से ही लौटा ले गई। उसे कुछ बोलने का अवसर भी न दिया।

बाबू महेशचन्द्र बड़ी बड़ी उमंगों में मग्न होते हुए आये थे। प्रमोद बाबू से वे किस प्रकार उन्हें 'मुँह देखे की प्रीति' आदि करके लज्जित करेंगे। वे सोच रहे थे कि कमरे में बैठे हुए प्रमोद किस प्रकार उन्हें देखते ही उठ दौड़ेंगे, फिर वे किस प्रकार ख़ूब मोठी मीठी फटकार सुनायेंगे; किन्तु कमरे में घुसते ही उनके हृदय को बड़ा भारी धक्का पहुँचा। प्रमोद बाबू के स्थान पर एक अपरिचित ने उनका स्वागत किया। महेशचन्द्र ने अकचकाकर पूछा—क्या आप बता सकते हैं कि प्रमोद बाबू कहाँ हैं?

उमाशङ्कर ने महेश को छेड़ने के लिये कहा—जी हाँ! मालूम तो है कि वह कहाँ हैं; लेकिन बता नहीं सकता। आज्ञा नहीं है।

महेश—कृपा करके उन्हें मेरे आने की सूचना दे दीजिये।

उमाशङ्कर उसी प्रकार बोले—आप कौन हैं?

महेश—इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। उनसे सिर्फ़ इतना कह दीजिये कि अपने जिस मित्र को बुलाया था वही मित्र आया है।

उमा०—माफ़ कीजिये! कोई सूचना देने की भी आज्ञा नहीं है।

महेश—तो आप कृपा करके मुझे यही बता दीजिये कि वे कहाँ हैं। मैं अपने आप ही चला जाऊँगा।

बाबू उमाशंकर ने और भी गम्भीर मुँह बनाकर कहा—माफ़ कीजिये! इसकी भी आज्ञा नहीं है।

महेश कुछ खीझकर बोले—इसकी भी नहीं—उसकी भी नहीं! तो क्या इसकी आज्ञा है कि आप मुझे अपना परिचय दें? आप उनके कौन हैं? नौकर तो मालूम नहीं होते; किन्तु आज्ञा मानने में नौकर से भी बढ़कर हैं।

महेश को और खिझाने की नीयत से बाबू उमाशंकर बोले—साहब, इसकी भी आज्ञा नहीं है!

महेश कुछ चिढ़कर बोले—अच्छी बात है ! आप उनकी आज्ञा मानिये। मैं जाता हूँ। यदि इसकी आज्ञा हो तो उन्हें मेरे आने की सूचना दे देना।

महेशचन्द्र ने दरवाज़े की तरफ़ मुँह फेरा और चलने के लिये उद्यत हुए। उसी समय बीच में आकर बाबू उमाशंकर ने दरवाज़ा घेर लिया और बोले—

इसकी भी आज्ञा नहीं है कि कोई यहाँ आकर और प्रमोद बाबू से मिले बिना लौट जाय।

महेशचन्द्र झुँझला पड़े—मैं अपनी इच्छा से आया हूँ और अपनी ही इच्छा से लौट जाऊँगा। देखूँ, कौन मुझे रोकता है !

उन्होंने एक कदम दरवाज़े की तरफ़ बढ़ाया। महेश को और चिढ़ाने के लिये उमाशंकर बोले—यह जंगल नहीं है जो आप बड़ी आसानी से जिधर मन चाहे उधर चले जाँय—डाकू साहब !

महेश झिझक गये। उन्हें स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि यहाँ इस नाम से सम्बोधन करनेवाला कोई आदमी होगा। और कोई उपाय न देखकर उन्होंने अपने खिसियापन को गुस्से में बदला। आपे से बाहर होकर वे बोले—

ऊफ़ ! यहाँ तक ! प्रमोद, मैं नहीं जानता था कि तुम मेरे ऐसे मिले हुए दुश्मन हो—मित्र बनकर मुझे इस तरह फँसाओगे। मालूम होता है मुझे कैद कराने की तैयारी की है। कुछ परवाह नहीं। लेकिन—अगर क़ैद में जाने से पहले तुम्हें एक बार देख पाता तो विश्वासघात करने का पूरा फल चखा देता—तुम मुँह छिपाकर भाग गये—यदि सामने आ जाते एक बार—सिर्फ़ एक बार—दुष्ट···नालायक······नराधम······।

महेश ने अन्तिम शब्द और भी ज़ोर से कहे थे जो बड़ी

शीघ्रता से प्रतिभा के कानों में घुस गये। प्रतिभा कई सालों के बाद अपनी मर्दानी पोशाक उतारकर अपनी ज़नानी पोशाक पहनने जा रही थी। वह उसी खुशी में मस्त जल्दी जल्दी जा रही थी कि यह तीक्ष्ण शब्द बड़ी सुगमता से उसके कानों में घुस गये। प्रतिभा घबड़ा गई, और क्या बात है, यह देखने के लिये उसी कमरे की तरफ मुड़ी। किन्तु उद्वेगों का धावा न सह सकी और चौखट तक पहुँचती न पहुँचती बेहोश होकर धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ी। कनक के मुँह से एक ज़ोर की चीख़ निकली।

२४

मालती गाड़ी में बैठी हुई चुपचाप एक तरफ देख रही थी और उसके साथ के बाबू भी दूसरी सीट पर बैठकर चुपचाप दूसरी तरफ की खिड़की से बाहर झाँक रहे थे। गाड़ी थोड़ी दूर गयी होगी कि इन लोगों को मानो होश आया। गाड़ी की मौनता को भंग करके बाबू बोले—मालती !

मालती मानो सोते से जगी। उसने एकदम चौंककर कहा—क्यों !

बाबू—बोलो, तुम कहाँ जाना चाहती हो? तुम्हारा कहीं कोई रिश्तेदार हो तो बताओ। अगर तुम जाना चाहो तो मैं तुम्हें आसानी से भेज सकता हूँ।

मालती ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—नहीं। मेरा अब कोई नहीं है। जो हैं वह मेरे लिये नहीं हैं। मेरे भाग्य फूटे हैं नहीं तो मेरी यह दशा क्यों होती !

बाबू—तो कोई परवाह नहीं है, बहन, तुम्हें 'बहन' कहने में मुझे गौरव मालूम होता है। चलो, तुम्हारे लिये मेरे पास बहुत जगह है। हाँ, एक बात और कहनी है। तुम मुझे वेश्यानुगामी एक बाबू ही अभी तक समझती रही हो। किन्तु यह बात नहीं है। मैं स्वयं-सेवक-मंडली का एक साथी हूँ। तुम्हें शायद याद नहीं है, लेकिन मुझे खूब याद है कि उस दिन तुम राह में भटक रही थीं, फिर मेरे ही साथ इस बुड्ढी के घर आयी थीं। बुड्ढी की बातों से मुझे उसके ऊपर सन्देह हुआ था। मैंने उसी शहर में रहकर गुप्त रीति से पता लगा लिया कि मेरा सन्देह ठीक था। तब तो मुझे अपने ऊपर बहुत पछतावा होने लगा कि मेरे ही कारण तुम नरक-कुण्ड में गईं। मैं तुम्हारे उद्धार का उपाय सोचने लगा।

मालती बीच ही में बोल पड़ी—ओह ! तभी जब आप पहले पहल मेरे यहाँ आये थे तब आप की सूरत मुझे कुछ पहचानी सी लगी थी; किन्तु उस समय मैंने उसे भ्रम कहकर ही टाल दिया था।

स्वयं-सेवक (अब बाबू को स्वयं-सेवक के ही नाम से पुकारेंगे) कहने लगे—मैंने काम हाथ में लेने से पहले तुम्हारी सम्मति जाननी चाही; क्योंकि जब तक मुझे विश्वास न होता कि तुम्हें वेश्याओं के जीवन से घृणा है तब तक मैं तुम्हें उस घृणित जीवन से बचाने का कैसे उपाय ठीक करता। तुम्हें एक जगह से बचाता तो तुम दूसरी जगह गिर पड़तीं।

मालती—मैं आपसे कैसे उऋण होऊँ। मुझे बचाने के लिये आपने अपने सिर पर भी बदनामी का टीका लगाया। वेश्यानुगामी बाबू का ढोंग रचा।

स्वयं-सेवक—नहीं, इसकी कोई ज़रूरत नहीं। मैंने तुम्हारे

ऊपर कोई एहसान नहीं किया। यह तो भाई का कर्तव्य था। अच्छा, अब आगे सुनो। जब मैं तुम्हारे यहाँ आने लगा तब मुझे धीरे धीरे तुम्हारे विचार मालूम हो गये। मुझे यह भी मालूम हो गया कि यदि तुम्हें रहने के लिये कहीं भी स्थान मिल जाय तो तुम बड़ी खुशी से बुड्ढी के घर को और अपने वेश्यापन को छोड़ दोगी। बस। मैंने बुड्ढी को उकसाया। फिर जो कुछ हुआ वह तो तुम्हें मालूम ही है।

मालती ने सम्मति-सूचक सिर हिलाया। स्वयं-सेवक फिर बोला—अच्छा, अब आगे क्या करना होगा, वह भी सुनिये। मेरी राय में आप बनारस चलिये। वहाँ हम लोगों ने एक छोटा सा स्कूल खोला है, जिसमें अशिक्षित लोगों को शिक्षा दी जाती है। आप चलकर वहाँ पढ़ाने का काम कीजिये। आपके मुँह से मैंने कई बार देश-सेवा करने की इच्छा सुनी है। मेरी समझ में इससे बढ़कर देश-सेवा का और कोई उपाय नहीं हो सकता।

मालती ने बड़े ध्यान से स्वयं-सेवक की सब बातें सुनीं। उसका ध्यान इस तरफ़ भी गया कि वह उसे कभी 'आप' और कभी 'तुम' सम्बोधन कर रहा था। मालती ने अनुमान किया कि अवश्य उसका यह धर्मभाई कुछ छिपा रहा है, जिसके कारण हृदय में खलबली होने से वह कुछ समझ नहीं सकता कि क्या बोल रहा है। उसने एक तीक्ष्ण दृष्टि से अपने भाई की तरफ़ देखा और पूछा—आप अपना नाम निशानाथ बताते थे। क्या यह सच है? निशानाथ (अर्थात् स्वयं-सेवक) ने सम्मति-सूचक सिर हिलाते हुए कहा—यह निशानाथ अपनी बहन से कभी झूठ नहीं बोल सकता।

मालती—आप मुझे कहाँ ले चल रहे हैं?

निशा०—बनारस। क्यों, क्या वहाँ जाने में कुछ आपत्ति है?

मालती—मुझे क्या आपत्ति हो सकती है। हाँ, अगर आप के घर में रह सकती तो अच्छा होता। अभी तो सिर्फ़ भाई ही पाया है, तब शायद माँ और भाभी भी पा सकती।

निशानाथ ने और बात बनाना उचित न समझा। वे बोले—बहन, यदि तुम्हें अपने घर रखना मेरे वश में होता तो मैं बहुत खुशी से तुम्हें रखता। किन्तु तुम तो जानती ही हो कि हमारी समाज.........।

मालती की आँखों के सामने उस रातवाला दृश्य घूम गया जब वह बुड्ढी से रक्षा पाने के लिये दर-दर भटक रही थी। किन्तु किसीको भी उसकी हीनावस्था पर दया न आयी। सब ने समाज का बहाना कर के उसकी सहायता से मुँह मोड़ा। मालती ने उस दिन सोच लिया था कि अब वह समाज से दूर ही रहने का प्रयत्न करेगी। किन्तु आज फिर इतने दिनों बाद उसका मन, न मालूम क्यों, गृहस्थी में घुसकर वहाँ की हवा खाने को चाहा। मालती अपने ऊपर लज्जित हो गयी और बीच ही में बोल पड़ी—हाँ, हाँ, मुझे खूब समाज मालूम है। अब मैं समाज को अच्छी तरह पहचान गयी हूँ। मैं तो सिर्फ़ आपको तंग कर रही थी।

इतने में गाड़ीवाले ने पूछा—बाबूजी, गाड़ी कहाँ ले चलें?

निशानाथ ने बैठे ही बैठे कहा—स्टेशन।

गाड़ीवान ने घोड़ों के एक चाबुक मारा। घोड़े फिर हवा से बातें करने लगे।

मालती किस प्रकार स्टेशन पहुँची, फिर कैसे बनारस गई, इन बातों को बताने से व्यर्थ में पाठकों का अमूल्य समय नष्ट होगा। हाँ, इतना अवश्य बताना पड़ेगा कि बाबू निशानाथ मालती को बनारस में स्वयं-सेवकों के खोले हुए स्कूल में पहुँचा

आये। मालती वहाँ बहुत आराम से रहने लगी और सारा दिन दुःखी-ग़रीब स्त्रियों और बच्चों के पढ़ाने में बिता देती। गंगा जी के पास ही स्कूल था। मालती ने थोड़े ही दिनों में गंगाजी के बिल्कुल किनारे पर एक छोटा सा घर बनवाया, जिसका नाम 'महेश-मन्दिर' रक्खा। मालती लाख प्रयत्न करने पर भी महेश को न भुला सकी। उसे जब समय मिलता तब वह अपने इसी 'महेश-मन्दिर' में आकर अपने बीते हुए दिनों की याद करती। कभी कभी गंगाजी की लहरों का थिरकना देखकर अपना सुख-दुख सब भूल जाती। उसके पास रुपया बहुत काफी था। उसने उसे एक बैंक में जमा कर दिया था और जो कुछ सूद आता, उसमें से अपने खाने-कपड़े के लिये ज़रा सा रखकर बाकी सब रुपया गरीबों को दान करती। इस दान को वह 'महेश-दान' कहती जो साल में एक बार पड़ा करता। कभी वह गंगाजी के किनारे पर पड़ी हुई एक पत्थर की शिला पर बैठकर अपनी इन्हीं ग़रीब बहिनों को धर्म-शिक्षा देती—उनको सीता-सावित्री की कथाएँ सुनाती। बस, निशानाथ के लौट जाने पर यही मालती की दिनचर्य्या होगई। वह इसीमें अपने को डुबाकर महेश को भुलाने का प्रयत्न करने लगी।

२५

जब प्रतिभा को होश आया, तो उसने देखा कि वह उसी कमरे में है। वह एक सोफ़े पर लेटी हुई है। उसकी एक तरफ़ उमाशंकर और दूसरी तरफ़ महेशचन्द्र खड़े हैं। प्रतिभा ने देखा

कि महेशचन्द्र के मुँह पर क्रोध व घृणा है और आँखों में दया। जिस मुँह को वह इतने दिनों से पूजा करती रही थी—जिस मुँह के दर्शन करने की आशा बिल्कुल निराशा में डूब गयी थी, वही मुँह आज कितने सालों बाद उसके सम्मुख उपस्थित है। महेश के पैर छूने के लिये प्रतिभा ने अपना क्षीण हाथ आगे बढ़ाया; किन्तु महेश उसी समय दो कदम पीछे हट गये। प्रतिभा की दृष्टि फिर महेश के मुँह पर अङ्कित भावों की तरफ़ पड़ी। उसने देखा कि लुप्त होने के बदले वे भाव अब और गहरे अङ्कित दिखाई पड़ते हैं। वह इसका कुछ आशय न समझ सकी। केवल एक लम्बी आह खींचकर उसने आँखें बन्द कर लीं। महेश ने प्रतिभा को आँखें खोलते और बन्द करते देखा और शायद उसकी आह भी सुनी। किन्तु इसका उनके ऊपर कोई असर नहीं पड़ा। वे कुछ ताने भरे स्वर में बोले—क्यों! क्या अपने घर पर बुला-कर मुझे अपमानित करने की ही तुम्हारी इच्छा थी प्रमोद बाबू!

प्रतिभा ने फिर आँखें खोलीं। इस बार उसकी आँखों में जल चमक रहा था। वह कुछ क्षीण काँपते हुए स्वर में बोली—नहीं, प्रमोद नहीं—मुझसे 'प्रतिभा' कहिये।

महेश चौंककर पीछे हट गये; किन्तु दूसरे ही क्षण ज़रा आगे बढ़कर बोले—क्या कहा? क्या यह भी सम्भव है प्रमो........?

प्रतिभा ने ज़रा सिर उठाकर कहा—जी! आपको 'प्रमोद' बनकर धोखा देनेवाली प्रतिभा मैं ही हूँ। मैंने आप को धोखा देकर पाप किया। इस पाप के लिये प्रायश्चित्त करने को तैयार हूँ। जो जी में आये, सज़ा दीजिये......बस। सिर्फ एक नहीं। अपने चरणों से दूर न कीजिये।

महेश एकटक प्रतिभा को तरफ़ देखने लगे। कैसी दिव्य ज्योति उसके मुँह पर चमक रही थी—कैसा स्वर्गीय प्रकाश

उसके मुँह पर छा रहा था। महेश की नज़र ऊपर न उठी। वे नीची ही दृष्टि करके बोले—

प्रतिभा! प्रतिभा!! क्या सचमुच ही मैं आज अपनी प्रतिभा को देख रहा हूँ!

प्रतिभा की आँखों से आँसू बह रहे थे। अर्द्धचेतनावस्था में उसने अपना सिर उठाकर महेश के चरणों पर रख दिया और उन्हें अपनी अश्रुधार से धोने लगी।

कनक उसी समय अपनी माँ को बुलाने आयी; किन्तु वहाँ का दृश्य देखकर चौखट पर ही ठिठक गई। महेश का उसने नाम सुना था। उसे यह भी मालूम था कि वे ही उसके पिताजी हैं। उससे यह भी नहीं छिपा था कि उन्हीं पिताजी के पीछे उसको और उसकी माँ को घर-द्वार छोड़कर दूर-दूर की भिखारिणी बनना पड़ा था। इतना होने पर भी उसके हृदय में अपने पिता के लिये जो कुछ बची-खुची भक्ति थी वह उस जंगल में लुप्त हो गयी, जिसमें उसने अपने पिता को डाकू के रूप में देखा था। अपने को उसी डाकू पिता की पुत्री कहने में उसे लज्जा आती थी— उस डाकू के साथ अपना कुछ भी परिचय देने में उसे घृणा आती थी। किन्तु अभी तक वह अपने यह सब भाव हृदय में ही दाबे रही थी। माँ के सरल हृदय को चोट न पहुँच जाये, इस भय से वह अपने भावों को होठों तक भी नहीं पहुँचने देती थी। परन्तु आज अपनी माँ को उसी पिता के चरणों पर शिर नवाये देखकर वह अपने भाव रोक न सकी। घृणा से उसने मुँह फेर लिया और उलटे पाँव लौटने लगी।

अचानक महेश की दृष्टि कनक पर पड़ी। अब पहचानने में कुछ देर न लगी। उन्होंने देखा कि उनकी वही छोटी सी पुत्री कनक अब बड़ी हो गयी है और उनसे, इतने दिनों बाद देखने

पर भी, बिना मिले ही लौटी जा रही है। न मालूम कहाँ का सोता हुआ वात्सल्य-प्रेम उनके हृदय में जाग पड़ा। वे कनक की तरफ़ बढ़े; किन्तु फिर ठिठक गये। उनके मुँह से अपने आप ही निकल गया—बेटी!

कितना स्नेहपूर्ण स्वर था—कैसी निराशा टपक रही थी! कनक ने सिर घुमाकर देखा कि महेश बड़े स्नेह और आग्रह से उसकी तरफ़ देख रहे हैं—और मुँह पर कभी आशा और कभी निराशा छा रही है। उसने यह भी देखा कि उसकी माँ बड़ी कातर दृष्टि से उसकी तरफ़ देख रही है। मानो कह रही है—

कनक, अपने पिता के हृदय को और मत दुखाओ—मेरे निर्बल हृदय पर बज्र गिराने की तैयारी मत करो........।

कनक लौट न सकी, न वह कुछ आगे देख ही सकी। उसने दोनों हाथों से अपना मुँह ढक लिया।

महेश ने एक ठंढी सांस लेकर कहा—बेटी, क्या अपने पिता से बात भी नहीं करोगी? क्या मुझे माफ़ नहीं करोगी? कनक ने वैसे ही मुँह ढके कहा—माफ़ी आप माँ से माँगिये, मुझसे क्या माँगते हैं?

प्रतिभा को अब मानो कुछ होश आया। उसने एक कठोर दृष्टि से कनक की तरफ़ देखा। फिर महेश से बोली—आप इस लड़की की बातों पर कुछ ध्यान मत दीजिये। माफी मुझे माँगनी चाहिये। मैंने अपना घर—बसा-बसाया घर—उजाड़ दिया। मैंने अपनी बहिन को कहीं का न रक्खा। मेरे ही कारण आपकी बदनामी फैली। मैंने कौन सा काम नहीं बिगाड़ा? माफ़ी माँगने की हिम्मत नहीं होती। यदि मैं मालती को उसके घर भेज देती तो यहाँ तक नौबत न पहुँचती। किन्तु मैंने तो उसे आग की तरफ़ जाते देख उसे उसमें कूदने के लिये उत्साहित किया।

बिचारी—अभागिनी बहन मालती अब इस समय न मालूम कहाँ है। ओफ़ ! सब बातें सोचकर हृदय में जलन होती है। मैं किन शब्दों में माफ़ी माँगूँ—किस किससे माफ़ी माँगूँ !

प्रतिभा का उठा हुआ शिर महेश के चरणों पर फिर गिर पड़ा। उसके सिर को दोनों हाथों से उठाते हुए महेश बोले—प्रतिभा, हम दोनों एक दूसरे के अपराधी हैं। जो हो गया सो हो गया। आओ, अब सच्चे हृदय से एक दूसरे को क्षमा कर दें। मेरा अपराध इतना भारी है कि उसे कहने के लिये कोई शब्द ही नहीं मिलता। किन्तु फिर भी तुम्हारा सरल हृदय देखकर कुछ आशा होती है। प्रतिभा, मुझे माफ़ करो..........।

कहते कहते महेशचन्द्र सिर पर हाथ रखकर बैठ गये। कनक ने मुँह पर से हाथ हटाकर देखा—कैसा स्वर्गीय दृश्य है ! पिता की कैसी दयनीय दशा है !! कनक के हृदय में न मालूम कहाँ से करुणा का एक स्रोत आकर बहने लगा। कनक को अपनी तरफ़ देखते देखकर महेश बहुत करुणामय शब्दों में बोले—बेटी कनक, क्या एक बार मुझ से 'पिता' भी नहीं कहोगी।

कनक का कठोर हृदय एकाएक पिघल गया। महेश की दृष्टि में कुछ ऐसा असर था कि कनक अपने को रोक न सकी। वह 'पिताजी' कहकर महेश की तरफ़ बढ़ी। प्रतिभा ने देखा कि उसकी वही हठीली उद्दण्ड स्वभाववाली लड़की अपने पिता के पैरों से चिपटकर रो रही है। यह दृश्य देखकर उसकी कुछ सूखी आँखों में फिर आनन्दाश्रु झलक आये। बाबू उमाशङ्कर न मालूम किस समय बाहर चले गये थे। इस आनन्दावसर पर आकर वे भी इस अनुपम दृश्य में अपने को भूल गये।

२६

कई महीनों के बाद की बात है। महेश मधुपुर के अपने उसी पुराने कमरे में एक चारपाई पर लेटे हुए व्यर्थ में सोने की कोशिश कर रहे थे। मध्याह्न-काल की प्रचंड किरणें रोशनदान से झांक-झांक-कर हँस रही थीं। पास ही फ़र्श पर बैठी हुई प्रतिभा अपनी सिलाई में निमग्न थी। एकाएक प्रतिभा ने अपना सिर उठाया। मानो उसे किसी बात को याद आगई हो। प्रतिभा ने ज़रा सहमते हुए महेश की तरफ़ देखकर कहा—

आपसे एक बात कहूँ—गुस्सा तो नहीं होंगे?

महेश ने जम्हाई लेते हुए उत्तर दिया—लो, पहले से ही वचन ले रही हो। भई, अगर गुस्सा होने की बात नहीं होगी तो क्या मुझे कुत्ते ने काटा है जो यों ही गुस्से में भुनूँ?

प्रतिभा—इतने दिन होगये, लेकिन अभी तक मालती का कुछ पता नहीं चला। परन्तु फिर भी अभी उसकी खोज बन्द नहीं करनी चाहिये।

महेश—खोज बन्द कहाँ कर रहा हूँ। तुम्हें तो मालूम ही है कि बड़ी मुश्किल से गोविन्दपुर में मालतीबाई नाम की एक वेश्या का पता चला था। नाम कुछ एक से होने से, और गोविन्दपुर ही गाँव होने से—जहाँ मैंने मालती को छोड़ा था—मैंने अनुमान किया कि कहीं यह मालतीबाई अपनी मालती न हो; लेकिन वहाँ जाने पर पता चला कि मालतीबाई नाम की वेश्या, बहुत दिन हुए, वहाँ से दूसरी जगह चली गई। कहाँ गई सो कुछ नहीं मालूम। इसके सिवाय मालती के नाम का भी कुछ पता नहीं चला। बताओ तो अब मैं क्या करूँ?

प्रतिभा—नहीं, इतने से ही आपका कर्तव्य पूरा नहीं

होगा। आपके ही पीछे बिचारी का यह लोक और परलोक दोनों बिगड़े। बिचारी न मालूम अब कहाँ न कहाँ टक्करें खाती फिरती होगी।

कहते कहते प्रतिभा का सिर फिर नीचे झुक गया। महेश ने बड़े कौतूहल से प्रतिभा की तरफ़ देखा। प्रतिभा की आँखों से पूर्ण सहानुभूति टपक रही थी। उसके दिव्य रूप को देखकर महेश विस्मित हो गये। वे बोले—प्रतिभा, क्या इतना सब होने पर भी तुम्हारे मन में मालती के लिये अब भी इतनी सहानुभूति है? अगर मालती मिल जाय, तो सच बताओ, क्या फिर तुम उसे अपने घर में घुसने दोगी?

प्रतिभा ने एक गहरी दृष्टि से महेश की तरफ़ देखा। मानो वह उनका अन्तःकरण पढ़ने की चेष्टा कर रही हो। फिर एकाएक बोली—नहीं ऐसा मत कहिये। मेरे विश्वास को मत हिलाइये—मेरे परम सुख की जड़ खोदने का प्रयत्न मत कीजिये। मैं सब सह सकती हूँ; किन्तु यह कभी नहीं सह सकूँगी कि लोग मेरी तरफ़ उँगली उठा-उठाकर कहें—देखो, यह स्वार्थी की स्त्री जा रही है।

आप उसे घर में घुसने देने की बात कह रहे हैं—मैं कहती हूँ कि मैं उसे सिर-आँखों पर बैठाऊँगी। किसी तरह वह मिले तो सही।

महेश ने ज़रा सिर ऊँचा करके कहा—यह क्या तुम सच कह रही हो? क्या सचमुच तुम मालती को पहले के समान मान सकती हो?

प्रतिभा सुई में तागा पिरोने जा रही थी; किन्तु महेश की बात सुनकर उसने अपना हाथ रोक लिया और बोली—

इस से जो मैं बुरा मानूँ तो किस लिये? उस बिचारी का

क्या दोष ? यह तो मेरे भाग्य में ही बदा था। मैंने उसका सत्या-नाश कर डाला। उस समय मैंने केवल आपका सुख सोचा था—आपको सुखी बनाना चाहा था। किन्तु उस सुख के लिये अपनी आहुति न देकर मैंने अज्ञान में मालती के सुख की, धर्म की आहुति दे दी। नहीं मालूम मैंने उसे किस बुरी घड़ी में अपने घर बुलाया। एक तो उसकी सुसरालवाले उससे यों ही घृणा करते थे; क्योंकि वह विधवा थी। इतने दिन हमारे यहाँ रही; लेकिन एक बार भी उसके यहाँ से बुलावा न आया। सुसरालवालों ने सोचा कि जब तक बला टल सके तभी तक सही। मालती का हाल अब कहीं छिपा नहीं रहा। उस दिन, जब मैं नौकर थी, बाबू उमाशंकर के यहाँ आपके विषय में चर्चा उठी और मालती का नाम सब से पहले आया। तभी से मेरी कुछ आँखें खुलीं। मुझे पछतावा होता है। बिचारी मालती को अब उसकी सुस-रालवाले अपनी चौखट भी न नांघने देंगे। तो क्या अब मैं भी उस जन्म-दुःखिनी के सामने दरवाज़ा बन्द कर दूं ? मैं—मैं—जो इन सब आफ़तों की जड़ हूँ.......................।

प्रतिभा का जोश शान्त हो गया और वह अपनी आँखें पोंछने लगी। महेशचन्द्र बड़े ध्यान से उसकी एक एक बात सुनते जा रहे थे। उसका एक एक शब्द उनके मर्मस्थल को पार करता जाता था। वह मन ही मन कहने लगे—मैं भी किस भूल में पड़ा था। इसके बाह्यरूप को देखकर इसके आन्तरिक रूप की कल्पना भी न कर सका था। इसके कितने उच्च भाव हैं। मैं अभी तक अपने सौन्दर्य पर फूला नहीं समाता था; किन्तु अब देखता हूँ कि मेरा यह रूप इसके इस रूप के सामने धूल के एक कण के भी समान नहीं है...........।

महेश भावावेश में एकदम उठकर बैठ गये। प्रतिभा भी

चौंककर देखने लगी कि वे अब क्या करने जा रहे हैं। महेश उठकर प्रतिभा के पास गये और वहाँ पर खड़े होकर कुछ सकुचाते हुए बोले—

प्रतिभा, एक बात कहूँ?

प्रतिभा—क्या बात?

महेश—मैंने उस दिन तुमसे माफी माँगी थी—आज फिर माँगता हूँ। जब तक तुम अपने मुँह से न कह दोगी कि 'माफ़ कर दिया' तब तक मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी।

प्रतिभा हँसने की चेष्टा करती हुई बोली—छिः, आप भी क्या बातें करते हैं। मैंने आपका कौन सा कसूर किया है कि आप मुझसे माफ़ी माँगकर मुझे नरक में फेंकते हैं।

महेश कुछ उत्तर देने ही वाले थे कि अचानक बाबू उमाशङ्कर आ गये। बाबू उमाशंकर महेश के मिलने के कोई एक सप्ताह बाद ही अपने गाँव रत्नपुर को लौट गये थे। आज उन्हें एकाएक आते देखकर महेश और प्रतिभा दोनों अचम्भित हो गये। उमाशङ्कर ने घुसते ही दोनों को लक्ष्य कर कहा—क्यों? तुम लोगों को मुझे देखकर अचम्भा हो रहा है?

प्रतिभा कुछ साहस करके बोली—अचम्भा तो नहीं; किन्तु यह समझ में नहीं आता कि आप एकाएक कैसे आगये। घर में कुशल तो है?

उमा०—हाँ प्रभो······ऊँह······प्रतिभा, सब कुशल ही है। मेरा मन घर में नहीं लगता, इससे सोचा कि ज़रा तीर्थ-यात्रा ही कर आऊँ।

प्रतिभा—तो अभी आप कहाँ जायेंगे?

उमा०—मैं अभी तो काशी जाने को सोच रहा हूँ।

महेशचन्द्र का मौन टूटा। काशी का नाम सुनकर वे बोले—

बाबू उमाशङ्कर, अगर हम लोग भी आपके साथ चलें तो क्या कुछ हर्ज है ?

उमा०—हर्ज क्या ? यह तो बहुत अच्छी बात है। लेकिन कसूर माफ़ हो तो एक बात कहूँ। आप लोगों ने तो इतने प्रश्न लगा दिये और मुझे खदेड़ने की इतनी फ़िक्र में पड़ गये कि मुझसे बैठने को भी न कहा।

महेश—अरे, आप अभी तक खड़े ही हैं। अच्छा, आइये बैठिये।

बाबू उमाशङ्कर महेश की खाट पर बैठ गये। थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करके उमाशङ्कर बोले—

आइये, आप लोगों को एक तमाशा दिखाऊँ। महेश और प्रतिभा दोनों उत्सुक होकर देखने लगे। बाबू उमाशङ्कर ने बाग़ की तरफ़ की खिड़की की तरफ़ इशारा करके कहा—उधर देखिये।

महेश और प्रतिभा ने देखा कि बाग़ में एक पेड़ के नीचे हरी हरी घास पर बैठकर कनक फूलों का एक सुन्दर हार बना रही थी और मदन पास के पेड़ों से फूल चुन-चुन-कर कनक को पकड़ा रहा था। इन लोगों के देखते ही देखते माला ख़तम हो गयी और कनक ने उसे मदन के गले में पहना दिया। इस दृश्य को देखकर महेश के मुँह से निकल पड़ा—अहा ! कैसी अच्छी जोड़ी है !

बाबू उमाशंकर ने महेशचन्द्र की बात सुन ली और सुनते ही बोले—अगर सचमुच में जोड़ी पसन्द है तो फिर इसे बनाये रखिये !

महेश—मैं तैयार हूँ।

उमाशंकर ने प्रतिभा की तरफ़ देखकर कहा—और तुम॰?

प्रतिभा—मैं भी तैयार हूँ।

उमा०—तो बस, आज से कनक मेरी लड़की हो गई और मदन तुम्हारा।

प्रतिभा अपने सीने की गठरी समेटने लगी। महेशचन्द्र और उमाशंकर भी इधर-उधर की गप्पें हाँकते हुए बाहर की तरफ़ चल दिये।

२७

उमाशङ्कर मधुपुर में आये तो इसलिये थे कि सब से मिल-मिलाकर कुछ दिन देश-भ्रमण करें और तीर्थ-यात्रा का पुण्य लूटें। किन्तु यहाँ आकर उन्हें अपना विचार स्थगित कर देना पड़ा। महेशचन्द्र ने उन्हें रोक लिया और कनक के विवाह के लिये जल्दी मचाने लगे। उनकी राय थी कि पहले कनक का विवाह कर दें, फिर निश्चिन्त होकर तीर्थयात्रा करें। उमाशङ्कर को भी उनकी राय माननी पड़ी। वे भी तीन-चार दिन रहकर अपने गाँव रत्नपुर को लौट गये। दोनों घरों में विवाह की बड़ी धूम-धाम से तैयारी होने लगी; क्योंकि पंडितजी ने एक महीने के बाद ही लग्न निश्चित की थी। इधर कनक इतने भारी ज़मीन्दार की अकेली पुत्री थी, उधर मदन भी बड़े भारी ज़मीन्दार का लाड़ला पुत्र था। फिर धूमधाम का क्या कहना। महीने भर पहले से ही दरवाज़े पर बाजे बजने लगे। मेहमान लोग आने लगे। दर्जियों की भरमार हो गयी और बड़े बड़े शहरों की मशहूर चीज़ें मँगाई जाने लगीं। चारों ओर ब्याह की ही चर्चा सुनाई पड़ने लगी।

महेशचन्द्र इस सुअवसर पर अपने मित्र विजयसिंह को

नहीं भूले। उन्होंने सब से पहले अपने एक विश्वस्त नौकर को उन्हें लिवाने के लिये भेजा। आदमी को गये हुए तीन दिन हो गये; किन्तु न विजयसिंह ही आये और न नौकर ही लौटा। महेशचन्द्र चिन्तित हो गये और चुपचाप कमरे में बैठे हुए थे कि नौकर ने विजयसिंह के आने की सूचना दी। उनको आदरपूर्वक अन्दर लिवा लाने की आज्ञा देकर स्वयं महेशचन्द्र उनके स्वागत के लिये उठ ही थे कि इतने में विजयसिंह ने अन्दर प्रवेश किया। विजयसिंह की सौम्य-शान्त मूर्ति देखकर महेश के हृदय में भक्ति उमड़ आयी और उन्होंने अपना सिर नवाकर सादर प्रणाम किया। महेश के झुके हुए सिर को अपने दोनों हाथों से ऊपर उठाते हुए विजयसिंह बोले—

भैया महेश, तुम्हें अपने इस भाई की कैसे याद आ गयी? मैं तो समझता था कि तुम बिलकुल ही भूल गये।

महेश—क्या कभी यह भी हो सकता है कि भाई भाई को भूल जाये?

विजय०—जिस दिन तुम आ रहे थे, मैंने उसी दिन कहा था कि मुझे ऐसा लगता है कि अब तुम फिर इस जगह लौटकर नहीं आओगे। क्या याद है?

महेश—हाँ, और खूब अच्छी तरह। लेकिन तब मुझे तुम्हारी बातों पर विश्वास नहीं हुआ था। अगर मुझे मालूम होता कि सचमुच में ही अब कभी अपने उस रमणीक जंगल में न जा सकूँगा तो मैं उसे तब तक देखता रहता जब तक कि मेरी आँखें थक न जातीं। मुझे वह जंगल कितना प्यारा था, यह तुम इसी से जान सकते हो कि चलते समय मैंने वहाँ से एक पत्ती उठा ली थी। वह पत्ती आज तक मेरे पास सम्हली रक्खी है।

विजय—लो, तुमने बैठने को भी न कहा।

महेश—क्या करूँ, ऐसी नष्ट आदत पड़ गयी है कि बैठने-उठने के लिये मुझसे कहा ही नहीं जाता। अभी उस दिन बाबू उमा-शङ्कर ने भी मुझे इसीलिये टोका था।

विजयसिंह ने कुर्सी खींचते हुए कहा—हाँ महेश, क्या यह बात सच है?

महेश ने कौतूहलपूर्वक देखकर कहा—कौन सी बात?

विजय०—यही कि तुम्हारी स्त्री प्रतिभा ने प्रमोद बाबू बन-कर कई साल तक बाबू उमाशङ्कर के यहाँ नौकरी की और किसी को उनके ऊपर सन्देह तक न हुआ।

महेश—क्या बताऊँ भाई, लेकिन बात बिल्कुल ठीक है।

विजय०—विश्वास नहीं होता। अगर किसी उपन्यास में पढ़ता तो उसे लेखक की बे-सिर-पैर की कल्पना कह कर हँसी में उड़ा देता; किन्तु यह बात तो आँखों देखी हुई है। इस पर कैसे विश्वास न करूँ? उस दिन जंगल में प्रमोद बाबू को देखकर मन में यह विचार तक न उठा था कि क्या ये सचमुच में कोई स्त्री हैं।

महेश—हाँ जी, यह तो ऐसी अजीब बात हो गई कि आँखों से देख लेने पर भी विश्वास करना कठिन मालूम होता है। हिन्दू स्त्री और वह भी अपने साथ में एक लड़की को रखकर मर्द का भेष रख ले और पहचानी भी न जाये, यह कुछ छोटी बात नहीं है। इसके लिये उस औरत में बहुत होशियारी होनी चाहिये।

विजय—लो, लग गये भाभी साहब की गुण-गाथा गाने!

महेश ने बात का रुख बदलने के लिये कहा—अब कनक की शादी के दिन पास आ गये। मुझसे तो कुछ करते-धरते बनता नहीं। चलो अच्छा हुआ तुम आ गये। अब सारे इन्तज़ाम

का बोझ तुम्हारे सिर लदेगा। मेरी तो बाबा किसी तरह जान छुटी।

थोड़ी देर अपनी पुरानी बातों का राग अलाप कर, अपने उन दिनों की याद करने के बाद—जब वे दोनों एक साथ रहते थे—विजयसिंह बोले—महेश, मेरा मन तो अब डाकूपन में लगता नहीं है। मैं तो अब संन्यासी हो जाऊँगा बस!

महेश—क्यों? संन्यासी क्यों बनोगे?

विजय—और नहीं तो फिर क्या करूँ? तुम्हें तो मालूम ही है कि मैं डाकू क्यों बना था। मैं अपने लिये डाकू नहीं बना था—मैं बना था अपने देश के लिये—अपने देश-भाइयों के लिये। किन्तु अब मुझे मालूम हुआ कि मैं डाकू बनकर अपने उद्देश को पूरा नहीं कर सकता। मुझे शुरू शुरू में तो बहुत जोश रहा था; किन्तु फिर थोड़े दिनों बाद वह शान्त हो गया। तुम्हारे आने के बाद मेरा मन नहीं लगता था। मैं बहुधा अकेला बैठा हुआ इधर-उधर की सोचा करता। धीरे धीरे मैंने अपने अन्तः-करण में प्रवेश किया, तब मुझे मालूम हुआ कि मैं यथार्थ में अपने देश और देश-भाइयों के लिये कुछ नहीं कर रहा हूँ। यह सब मेरा बहाना-मात्र है। अन्दर स्वार्थ-पूर्ति की इच्छा ही मुझे डाकू बनाये है। मुझे तब से अपने ऊपर घृणा हो गयी। अपने कार्य्यों के ऊपर घृणा हो गयी। किन्तु हाँ, अपने उद्देश से अभी तक घृणा नहीं हुई। तब मैं धन की सहायता से अपने उद्देश तक पहुँचना चाहता था; परन्तु अब मैं अपने इस शरीर की ही सहायता से उद्देश तक पहुँचना चाहता हूँ। अब अपने देश के लिये मैं अपना शरीर अर्पण कर दूँगा।

महेश बहुत ध्यान से विजयसिंह की बातें सुन रहे थे। विजयसिंह के चुप होने पर वे बोले—

विजय, क्या एक बात कहूँ ?

विजय ने उत्सुकता-पूर्वक महेश की तरफ़ देखकर कहा—क्या बात ?

महेश—संन्यासी होने से तुम अपने उद्देश को नहीं पा सकोगे। उससे और दूर चले जाओगे।

विजय—तो क्या अब कोई उपाय नहीं है जो मैं अपनी इच्छा पूरी कर सकूँ ?

महेश—है क्यों नहीं। तुम हताश क्यों होते हो ?

विजय—तो फिर बताओ।

महेश—नहीं, अभी नहीं। पहले कनक का विवाह हो जाने दो, फिर बताऊँगा। बस थोड़े ही दिन की बात है।

लाचार होकर विजयसिंह चुप हो गये।

२८

कनक की बारात बहुत धूमधाम से परसों बिदा हो गयी। महेश मन ही मन डर रहे थे कि जातिवालों ने उन्हें कहीं जाति से निकाल न दिया हो। किन्तु कनक के विवाह में भारी भीड़ देखकर उनके मन का सन्देह मिट गया। जाति-बिरादरी-वालों को इतना साहस न हुआ कि एक अमीर ज़मीन्दार को जाति-च्युत कर दें। वे आपस में ही खिचड़ी पकाकर चुप हो गये। भला रुपया क्या नहीं करा सकता ? सुखिया विवाह के दिनों में रात-दिन दौड़-दौड़कर काम करती। बुद्धू, गोबरे आदि जो महेश को जाति से बाहर निकलवाने के लिये तुले हुए थे, अब महेश के हाथ बिन दामों बिक गये। बारात के साथ ही साथ घर

की सारी चहल-पहल भी बिदा हो गयी। काम करते करते सब लोग थक गये थे। अब सब के ऊपर एकदम से आलस्य सवार हो गया। विवाह के दूसरे दिन तो सब लोग इधर-उधर लोटे-पोटे विवाह की ही चर्चा छेड़ते रहे। तीसरे दिन जाकर कहीं कुछ शान्ति हो गयी। विजयसिंह भी घूमते-घामते महेश के पास पहुँचे और बातें करने लगे—भाई अब तो विवाह हो गया है। मैं भी अब लौट जाऊँ ? क्या राय है ?

महेश—वाह साहब ! तुम तो मेहमानों से भी बढ़ गये। इतनी जल्दी काहे को है ?

विजय—आख़िर एक दिन तो जाना ही है। बहुत दिन साथ रहने से फिर मोह बढ़ जायगा।

कहते कहते विजयसिंह की आँखें डबडबा आईं। वे उन्हें छिपाने का प्रयत्न करने लगे। महेश ने दबी दृष्टि से सब देखा; किन्तु देखकर भी चुप रहे। समझ न सके कि वे क्या करें। वे मन ही मन सोचने लगे—

कितनो अद्भुत प्रकृति का मनुष्य है। एक तरफ़ डाकुओं का कठिन काम—उनका कठोरपन; और दूसरी तरफ़ इतना सरल-हृदय—ऐसा स्नेहमय स्वभाव। न मालूम मेरे यह किस जन्म के पुण्यों का प्रभाव है जो ऐसे महापुरुष का साथ हुआ। क्या अब कोई उपाय नहीं है जो इस साथ को छूटने से बचाकर चिरस्थायी बना सकूँ ?

महेश चिन्तामग्न हो गये। थोड़ी देर चुप रहकर विजयसिंह बोले—क्या तुम्हें उस दिन की याद है जब तुम जंगल से यहाँ आये थे ?

महेश—हाँ, खूब अच्छी तरह। उस दिन की एक एक बात अब भी मेरे कानों में गूँजती है—एक एक दृश्य अब भी

मेरी आँखों के सामने आकर नाचने लगता है। उस दिन की याद को भुलाना मेरे लिये असम्भव है।

विजय—अच्छा, तो तुम्हें यह भी याद होगा कि मैंने उस दिन क्या कहा था।

महेश को अचानक वह बात याद आ गई जो उस दिन विजयसिंह ने कही थी।

विजवसिंह फिर बोले—देखो, मेरा कहना कितना सच हो गया। तुम यहाँ आकर ऐसे फँस गये कि फिर उस जङ्गल में लौटने का नाम तक न लिया।

महेश जल्दी से बोल पड़े—तुम तो जानते ही हो कि इसमें मेरा कुछ वश नहीं था।

विजय—तो तुम घबड़ाते क्यों हो? मैं तुम्हें कुछ उलाहना नहीं देता हूँ। मैं तो सिर्फ़ बात कहता हूँ। आज फिर मेरा मन कह रहा है कि अब हम लोग अलग होकर फिर कभी नहीं मिलेंगे।

महेश—फिर भी तुम इतनी जल्दी मचाते हो?

विजय—नहीं तो फिर क्या करूँ? जितने दिन ज़्यादा साथ रहेंगे उतना ही मोह बढ़ेगा। फिर जब कभी मिलना ही नहीं है तो फिर मोह बढ़ाना फ़िज़ूल है। इससे सिर्फ़ दुःख ही होगा। बस, अब मेरी समझ में सब से अच्छी तरकीब यही है कि तुम मुझे भूल जाओ और मैं तुम्हें भुलाने की कोशिश करूँ।

दोनों मित्र फिर चिन्ता में निमग्न हो गये। थोड़ी देर बाद महेश ने एकाएक सन्नाटे को भंग किया—

मैंने उस दिन तुम से कहा था न कि तुम्हारे उद्देश के पूर्ण होने का एक और उपाय है? बोलो, उसे जानना चाहते हो?

विजयसिंह ने उत्सुक होकर कहा—हाँ।

महेश—लेकिन उसे जानने से पहले तुम्हें एक प्रतिज्ञा करनी होगी।

विजय—कौन सी प्रतिज्ञा ?

महेश—यही कि मैं जो उपाय बताऊँगा उसे तुम ज़रूर मानोगे।

विजय—उपाय को जाने बिना मैं कैसे प्रतिज्ञा कर लूँ ?

महेश—तो फिर क्या तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं है कि मैं तुम्हारी भलाई ही सोचूँगा, बुराई नहीं ?

थोड़ी देर तक दोनों मित्रों में बहस होने लगी। अन्त में लाचार होकर विजयसिंह ने प्रतिज्ञा कर ली। महेशचन्द्र बोले—तुम क्षत्री हो, विजयसिंह, एक बार जो प्रतिज्ञा कर ली उसे कभी टालोगे ?

विजय—क्षत्रियों को इसके कहने की ज़रूरत नहीं होती।

विजयसिंह की चौड़ी छाती गर्व से और फैल गई और ऊँचा सिर और तन गया। महेशचन्द्र बिना कुछ बोले अपनी कुर्सी पर से उठे और मेज़ पर रक्खे हुए केबिनेट में से एक काग़ज़ निकालकर विजयसिंह की तरफ़ बढ़ाते हुए बोले—बस, इस पर हस्ताक्षर कर दो। विजयसिंह ने काग़ज़ खोलकर देखा। उसमें विजयसिंह को मधुपुर का मन्त्री बनाने का प्रस्ताव था। काग़ज़ पर से दृष्टि हटाते हुए वे महेश से बोले—यह क्या है ?

महेश ने बड़े शान्तभाव से कहा—आपको आपके उद्देश पर पहुँचाने का एक सरल उपाय !

विजय—हाँ, यही तो देखता हूँ। किन्तु ज़रा सोचो तो सही। क्या मैं यह काम कर सकूँगा ? क्या कभी एक डाकू ऐसा बोझ सम्हाल सकता है ?

महेश—अब आप मना नहीं कर सकते। प्रतिज्ञा कर चुके हैं। बस, हस्ताक्षर करो !

बड़ी कठिनता से इधर-उधर करके विजयसिंह ने काग़ज़ पर हस्ताक्षर कर दिये। महेशचन्द्र खुशी से उछल पड़े।

२९

विजयसिंह के अद्भुत स्वभाव में एक और अद्भुतपन था। वे या तो किसी काम में हाथ ही नहीं डालते थे और यदि कभी किसी काम को शुरू करते तो फिर उसे अधूरा नहीं छोड़ते थे। उसीमें तन्मय हो जाते। यही दशा उनकी मन्त्री होने पर भी रही। मन्त्री-पद को स्वीकार करने से पहले वे एक बार अपने उसी जंगल में गये और सब से बिदा माँगकर थोड़े ही दिनों बाद अपने काम पर आ डटे। जब से उन्होंने काम शुरू किया तब से मधुपुर की कायापलट ही होने लगी। धीरे-धीरे मधुपुर बिल्कुल बदल गया। जगह-जगह पर सुन्दर उपवन, रमणीक वाटिकायें पथिकों को ललचाने लगीं। फलों-फूलों से लदे हुए वृक्ष सड़कों के किनारे खड़े होकर आगन्तुकों का स्वागत करने लगे। सारी ज़मीन्दारी में सुख और शान्ति बरसने लगी। प्रजा धनी और समृद्धिशाली होकर चैन की बंशी बजाने लगी।

उधर बाबू उमाशङ्कर का मन फिर तीर्थयात्रा करने को चाहने लगा। वे महेश के यहाँ आ धमके। कनक अपनी सुसराल में मौज करती थी। इधर उसकी माँ को सारा घर मानो खाने दौड़ता हो। पहले तो कनक सुसराल से जल्दी-जल्दी लौट आयी थी; किन्तु अब जब से वह तीसरी बार सुसराल गई तब से वह बहुत दिन हो गये, फिर भी न आई। प्रतिभा का मन उचाट खाने लगा। इसी अवसर पर उमाशङ्कर वहाँ आ गये। प्रतिभा भी तीर्थ-

यात्रा के लिये सहमत हो गई। दोनों के कहने से महेश भी राज़ी हो गये; किन्तु विजयसिंह किसी प्रकार ज़मीन्दारी का काम छोड़कर कहीं जाने के लिये राज़ी न हुए। लाचार उन्हीं के ऊपर ज़मीन्दारी का सारा इन्तज़ाम छोड़कर महेशचन्द्र, प्रतिभा और उमाशङ्कर तीर्थ-यात्रा के लिये चल दिये। इधर-उधर तीर्थों के दर्शन करते हुए वे लोग बनारस पहुँचे।

महेश आदि को काशी आये हुए धीरे-धीरे चार दिन हो गये। हवा में थिरकती हुई निर्मलसलिला श्रीभागीरथी की लहरों ने इन लोगों का ऐसा मन मोह लिया कि वहाँ से कहीं जाने को इनका मन ही नहीं चलता। कहीं मन्दिरों के घण्टों की मधुर ध्वनि, कहीं आरती की घण्टी की झनझनाहट, कहीं पुजारियों के कण्ठ से निकली हुई स्तुति की सरस तान, कहीं शंख का तीव्र नाद—एक एक में इन लोगों का मन अटक जाता था। घर छोड़े हुए बहुत दिन हो गये थे। अन्त में बहुत सोच विचार-कर इन्होंने आज रात को घर लौटने का निश्चय किया। प्रतिभा ने बड़ी सावधानी से सारा असबाब बाँधकर रख दिया। फिर सब लोग अन्तिम बार विश्वनाथजी के मन्दिर में दर्शन करने और सुरसरिता में नहाकर अपने बचे-खुचे पापों को भी धोकर बिल्कुल पवित्र होने के लिये चल दिये। दर्शन करने के बाद गंगाजी के तट पर खड़े होकर सब ने देखा कि एक नाव गंगाजी के वक्षस्थल को चीरती हुई अपनी मन्दगति से चली आ रही है। डूबते हुए सूर्य्य भगवान् की सुनहली किरणें पानी में नाचती नाचती नाव में झांकने लगती हैं। शीतल समीर का एक झकोरा उन्हें पकड़ने दौड़ता है; किन्तु उसी समय वे चपल किरणें अपना नाचना छोड़कर लहरों में छिप जाती हैं। महेश आदि का मन ललचा गया। नाववाले को पास बुलाकर वे लोग

उसमें बैठ गये। नाव फिर लहरों से टकराती हुई चलने लगी।

महेश आदि मुग्ध होकर दृश्य की मनोहरता देखने लगे। एकाएक महेश को मानो कोई पुरानी बात याद आ गई। वे प्रतिभा से बोले—प्रतिभा, कितने अचम्भे की बात है कि मैंने आज का यह घूमना कई वर्ष पहले स्वप्न में ही देख लिया था।

प्रतिभा बड़े ध्यान से लहरों का उठना-बैठना देख रही थी और धीरे-धीरे कुछ गुनगुना रही थी। महेश की बात सुनकर उसे हँसी आगई। वह बोली—

क्यों आप फ़िज़ूल में बातें बनाते हैं! क्या आपने बिल्कुल ऐसा स्वप्न देखा था?

महेश का शंकित हृदय काँप गया। उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो प्रतिभा उस स्वप्न की सारी बातें जानती है। वे जल्दी से बोल पड़े—नहीं, मेरा मतलब बिल्कुल से नहीं है। स्वप्न में मैंने तुम्हें नहीं देखा था—मालती को देखा था और बाबू उमाशङ्कर को तो बिल्कुल ही नहीं देखा था।

उमाशङ्कर पास ही बैठे हुए ठंढी ठंढी हवा पाकर ऊँघने लगे थे। अपना नाम सुनकर वे चौंके और बोले—क्या कहा?

उमाशङ्कर के प्रश्न का उत्तर सुनने के लिये नाचती हुई लहरों ने आकर नाव को घेर लिया। नाव भँवर में फँस गई। मल्लाह घबड़ा गया। प्रतिभा चीख पड़ी।

उमाशङ्कर के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

किन्तु नाव का ध्यान इन लोगों की तरफ़ नहीं गया। वह अपने बालसखा भँवर के साथ नाचने में निमग्न थी। नाव एक बार उछली, फिर टेढ़ी हो गयी। उमाशङ्कर सब से पहले पानी में गिर गये। वे तैरना नहीं जानते थे, इसलिये गिरते ही डुबुक डुबुक करने लगे। मल्लाह भी पास ही

गिरा था ; किन्तु वह तैरना जानने के कारण किनारे की तरफ़ तैरने लगा था। बाबू उमाशङ्कर की दशा देखकर उसने उन्हें पकड़ लिया और जल्दी जल्दी किनारे को तरफ़ तैरने लगा। नाव ने पल्था खाया। इस बार वह उधर की तरफ झुकी जिधर महेश और प्रतिभा बैठी थी। नाव की गति देखकर प्रतिभा डरी और उसने कसकर महेश को पकड़ लिया। महेश भी अब प्रतिभा को छोड़ना नहीं चाहते थे। उन्होंने यथाशक्ति कसकर प्रतिभा को पकड़ लिया, जिससे कहीं गंगाजी की लहरें उनके पास से प्रतिभा को सदा के लिये छीन न ले जायें। दोनों एक दूसरे का सहारा लेकर गंगाजी पर उतराने लगे। महेश थोड़ा थोड़ा तैरना जानते थे। उसीकी सहायता से वे थोड़ी देर तक अपने को और प्रतिभा को सम्हाले रहे। प्रतिभा बेहोश हो गई थी, इसलिये उसे सम्हालना अब और कठिन हो गया। महेश ने दूर दूर तक आँखें दौड़ाईं ; किन्तु उन्हें कोई भी नज़र न पड़ा, जिससे वे सहायता माँगते। महेश ने हताश होकर प्रतिभा को अपनी पीठ से बाँध लिया और किनारे पर पहुँचने का भरसक प्रयत्न करने लगे। जितना ही वे किनारे की तरफ़ पहुँचते जाते थे उतना ही उनके लिये किनारा दूर होता जाता था। धीरे धीरे उनके हाथ-पैर शिथिल हो गये और आँखें अपने आप ही बन्द हो गईं। गंगाजी की लहरें बारबार आकर उनके कानों में कुछ गुनगुना जातीं। गंगाजी उनके सिर को अपनी गोद में रखकर हलकी हलकी थपकियाँ देने लगीं। महेश अचेत हो गये। किन्तु उस अचेतनावस्था में भी उन्हें मालूम हुआ कि कोई उनके पास आकर उनको किसी चीज़ से बाँध रहा है।

३०

गंगाजी की महिमा निराली है। मनुष्य समय-असमय सब भूलकर इनके तट पर आकर शान्ति प्राप्त करने की इच्छा करता है। भागीरथी का किनारा चाहे जितना भी प्रयत्न जनशून्य होने का करे; किन्तु यथार्थ में वह कभी निर्जन नहीं हो सकता। जिस समय महेश ने अपनी सहायता के लिये चारों तरफ़ देखा था, और किसीको न देखकर वे हताश हो गये थे, उस समय दूर पर दो स्त्रियाँ किनारे पर खड़ी थीं। शायद वे नहाने आयी थीं। किन्तु महेश और प्रतिभा—दो प्राणियों को इस प्रकार मृत्यु का शिकार होते देखकर वे दोनों घबड़ा गयीं। उनमें से एक बोली—समझ में नहीं आता कि इन लोगों को कैसे बचाऊँ।

दूसरी ने जवाब दिया—माँजी, तुम तैरना जानतीं हो न ? एक दिन तो कह रही थीं।

माँजी—हाँ चपला, कुछ थोड़ा-बहुत आता है; लेकिन इतना नहीं आता कि किसी को बचा सकूँ.........ओ ! चपला, देखो-देखो, वह डूबा जा रहा है। होगा ! चपला ! एक बार कूदकर तो देखूँ—शायद बचा सकूँ। नहीं तो फिर अब मेरे ही इस दुःखमय जीवन का अन्त हो जायगा। यदि उसको बचाकर मैं मर भी गई तो भी यही धीरज होगा—मेरी आत्मा को यही शान्ति मिलेगी कि मेरा जीवन बिलकुल निरर्थक नहीं गया। आह ! देखो वह डूबा.........।

माँजी जल्दी से गंगा की तरफ़ झपटीं; किन्तु चपला ने बीच ही में उनकी सफ़ेद धोती पकड़कर कहा—नहीं, इससे कुछ फ़ायदा नहीं होगा। अगर ऐसा ही है तो ज़रा ठहरो।

चपला ने नहाकर पहननेवाले कपड़ों में से दो धोतियाँ

निकालीं और एक से माँजी की कमर बाँधकर दूसरी धोती का सिरा उसमें बाँधने लगी। चपला ने फिर एक धोती और निकाली और यह कहकर उसे भी धोती में बाँधने लगी—"अच्छा हुआ जो आज मैं महीन धोती पहने थी, नहीं तो यह मोटी धोती कहाँ से आती।" चपला फिर माँजी से बोली—"माँजी, लो अब गंगाजी में कूदो, मैं इस धोती का सिरा इस पासवाले पेड़ में बाँधे देती हूँ।" माँजी जल्दी से गंगाजी में कूदीं और एक क्षण के लिये वहाँ की लहरों में गायब हो गईं। चपला ने उत्सुकतापूर्वक देखा कि माँजी का सिर बाहर निकला और वे उस डूबते हुए मनुष्य की तरफ़ बढ़ने लगी हैं। महेश के हाथ-पैर इस समय शिथिल होने लगे थे। चपला ने थोड़ी देर में देखा कि माँजी उस डूबते हुए मनुष्य के पास तक नहीं पहुँच रही हैं; क्योंकि धोती की रस्सी छोटी पड़ गई है। और कोई उपाय न देखकर उसने अपनी धोती का, जिसे पहने थी, सिरा भी बाँध दिया और अपने आप एक ऊनी चद्दर में लिपट गई। महेश का मुँह इस समय माँजी की तरफ़ फिरा; किन्तु उस समय उनकी आँखें बन्द थीं। मालूम नहीं उन्होंने माँजी को देखा या नहीं। माँजी मुँह देखकर चौंकीं; किन्तु दूसरे ही क्षण अपने आप कहने लगीं—

वाह! मैं भी कैसी बेवकूफ़ हूँ। भला वे यहाँ कैसे आ सकते हैं!

माँजी ने बिना कुछ विलम्ब किये झपटकर महेश को पकड़ लिया। एक हाथ महेश की पीठ की चारों तरफ़ डालकर दूसरे हाथ से तैरने का प्रयत्न करने लगीं। प्रतिभा को देखकर भी वैसी ही चौंकी जैसे महेश को देखकर चौंकी थीं। एक तो दो आदमियों को पकड़कर एक हाथ से तैरने में मेहनत पड़ी—ऊपर से यह दो बार का चौंकना, जो माँजी के हृदय में उठती हुई खल-

बली दर्शा रहा था—माँजी बेहोश होगईं। चपला ने शायद यह देख लिया; क्योंकि उस समय वह रस्सी खींचने का भरसक प्रयत्न कर रही थी।

चपला ने रस्सी खींच ली। उस मर्दानी औरत में न मालूम कहाँ से इतना बल आ गया जो उसने तीन जनों के बोझ को खींचकर बाहर निकाल लिया। तीनों व्यक्ति उस समय बेहोश पड़े थे। माँजी की सफ़ेद धोती में से निकल-निकलकर काले बाल उनके सुन्दर गोरे मुँह को, नज़र लगने के डर से, छिपाने का प्रयत्न कर रहे थे। चपला जल्दी से पासवाले घाट की तरफ़ बढ़ो कि किसीको सहायता के लिये बुलायें। घाट फिर भी काफी दूर था। इधर इन तीनों प्राणियों को ईश्वर के ऊपर छोड़-कर वह जल्दी जल्दो घाट की तरफ चलने लगी। भाग्य से उस समय घाट के इधर ही कुछ आदमी मिल गये। चपला उनको लेकर जल्दी से लौट आयो। तीनों प्राणी अभी तक वैसे ही पड़े थे। चपला ने सब से पहले अपनी माँजी को छूकर देखा। साँस अभो तक चल रही थी, लेकिन बहुत धीरे। प्रतिभा की भी साँस धीरे धीरे चल रही थी। परन्तु हाँ, माँजी की बराबर नहीं। महेश की साँस प्रतिभा और मालतो दोनों से ही अधिक अच्छी तरह चल रही थी। और बिलम्ब करना उचित न समझ-कर चपला आये हुए आदमियों की सहायता से तीनों बेहोश प्राणियों को अपने घर लिवा गयी। घर के दरवाज़े पर मोटे मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था—"महेश-मन्दिर"। किन्तु उस समय उस पर किसीका ध्यान न गया। चपला ने अन्दर जाकर तीनों को लिटाया। फिर एक आदमी को डाक्टर साहब को बुलाने के लिये भेजकर वह यथाशक्ति इन प्राणियों की सेवा करने लगी। उसने तीनों को औंधा कर लिटाया। इस प्रकार उनकी आँख,

कान और मुँह में भरा पानी टपकने लगा। चपला को पानी निकालने की और कोई तरक़ीब मालूम नहीं थी। वह जल्दी से आग सुलगाने लगी। थोड़ी देर में अपना सामान लेकर डाक्टर साहब अपने कम्पाउंडर के साथ आ गये। उन्होंने तीनों को जाँचकर माँजी की ओर इशारा करते हुए कहा—और लोग तो बच जायेंगे; लेकिन इनका बचना ज़रा मुश्किल मालूम होता है। चपला का हृदय काँप गया। क्या सचमुच माँजी अब सब को यों ही छोड़कर उस अनन्त-धाम को चली जायेंगी? अब कुछ सोचने-विचारने के लिये समय नहीं था। चपला अपने भावों को दाबकर, मन में ईश्वर को मनाती हुई, डाक्टर साहब की आज्ञा पालने के लिये उद्यत हो गई। डाक्टर साहब को जिन चीज़ों की ज़रूरत पड़ती उन्हें वह जल्दी से जल्दी पहुँचाने लगी। तीन तीन रोगियों की देखभाल करना डाक्टर साहब को मुश्किल हो गया। माँजी की हालत बहुत ख़राब थी। इसलिये स्वयं डाक्टर साहब उनकी सेवा में लग गये। एक आदमी को उन्होंने और एक डाक्टर साहब को बुलाने के लिये भेजा। तब तक उन आदमियों में से एक को महेश का काम करने के लिये आदेश किया। प्रतिभा की देखभाल कम्पाउंडर करने लगे। महेश की हालत, जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, बहुत खराब नहीं थी। उल्टे लेटने से ही बहुत पानी निकल गया था। बचा-खुचा पानी महेश के पेट और पीठ को दाबने से निकल गया। धीरे धीरे जब महेश के शरीर में गरमी पहुँचाई गई तो थोड़ी ही देर में उन्होंने आँखें खोल दीं। जब तक दूसरे डाक्टर साहब आये तब तक महेश की तबियत काफ़ी सुधरने लगी थी। नये डाक्टर साहब ने प्रतिभा का केस अपने हाथ में लिया और कम्पाउंडर को महेश

के लिये छोड़ दिया। प्रतिभा की दशा, यद्यपि माँजी से अच्छी थी, तथापि महेश से ख़राब ही थी। उसकी तबियत इतनी जल्दी नहीं सुधरी। कोई दूसरे दिन दोपहर को उसे कुछ होश हुआ। थोड़ी देर तक उसकी अजीब हालत रही। कभी होश आता और कभी बेहोश हो जाती। धीरे धीरे उसकी तबियत सम्हलने लगी। तबियत जब कुछ कुछ सुधर गई तब डाक्टर साहब के कहने से चपला गुनगुना दूध ले आई। किन्तु प्रतिभा का ध्यान उस समय पीने की तरफ़ कहाँ!

वह बारबार महेश के लिये सोचती थी कि वे कहाँ हैं—जीवित हैं या नहीं। उसके मन में प्रश्न उठता था—यह किसका घर है? मुझे यहाँ कौन लाया? और क्यों लाया?

दूध पीने के लिये चपला का अनुरोध सुनकर वह बोली—क्या आप मुझे यह बतायेंगी कि क्या कोई आदमी भी मेरे साथ यहाँ आये थे?

चपला—हाँ, एक आदमी आपके साथ ही बेहोश मिला था।

प्रतिभा ने सशंकित हृदय से पूछा—क्या वे बेहोश थे? ज़रा बताइये वे अब कैसे हैं? अगर वे भी बेहोश थे तब फिर हम लोग पानी से बाहर कैसे निकले? जो यहाँ आये थे वे देखने में कैसे हैं? एक बहुत सुन्दर थे—लम्बा कद था, घुँघराले बाल थे; दूसरे इतने सुन्दर नहीं थे। बताइये यहाँ जो आये थे वे दोनों में से कौन थे?

चपला—जल्दी दूध पी लीजिये। जो आपके साथ आये थे वे पहले हो अच्छे हो गये। मुझे बहुत बात करने की फ़ुर्सत नहीं। माँजी की तबियत बहुत ख़राब है।

प्रतिभा—माँजी! माँजी कौन?

चपला—आप तो देर लगा रही हैं। माँजी को आप बिना

देखे कैसे जान सकती हैं ? सुना जाता है कि वे पहले एक वेश्या थीं; लेकिन अब उन्होंने वह सब छोड़कर दूसरों की भलाई करने में ही अपने प्राणों को न्योछावर कर दिया। आप लोगों को डूबते देखकर बचाने के लिये वे ही गंगाजी में कूद पड़ी थीं। तब से उनकी तबियत बहुत खराब हो गई। अभी तक सम्हल नहीं पायी।

कहते कहते चपला की आँखें सजल होगईं। अपनी आँखों को पोंछकर वह बोली—लीजिये, अब दूध पी लीजिये। और देर मत लगाइये।

प्रतिभा एक क्षण तक चुप रहकर बोली—अच्छा, आप दूध यहाँ रख दीजिये और ज़रा उनको यहाँ भेज दीजिये जो मेरे साथ डूबते हुए मिले थे। मैं अपने आप पी लूँगी।

चपला ने दूध का गिलास रख दिया और बाहर चली गई। प्रतिभा अपने आप ही कहने लगी—

भगवन्! वे कहाँ हैं ? हे ईश्वर यह वही हों। बाबू उमाशङ्कर बिचारे न मालूम कहाँ हैं—कैसे हैं। मेरे भाग्य में अब और क्या देखना है—परमात्मन्! अब दया करो...... ।

३१

माँजी की तबियत आज कई दिनों बाद जाकर रुकी। उनको उसी डूबने के सिलसिले में बुख़ार भी हो आया था। पानी [illegible] बेहोशी के दूर होते न होते उन्हें बुख़ार की बेहोशी ने घर द[illegible] था। आज ज्वर का वेग ज़रा कम होने से उन्हें कुछ होश [illegible] गया। होश में आने पर आँख बन्द किये हो किये वह चि[illegible]

, क्या तुम सचमुच महेश ही हो" ? पास
...ह सुनकर चौंकी। उसे माँजी की पूरी जीवन-
... था। उसके मन में प्रश्न उठने लगा—क्या इन्होंने
महेश को देखा था ? कहीं वह डूबनेवाला व्यक्ति ही तो
महेश नहीं है ?

अपने प्रश्न का कोई उत्तर न पाकर माँजी ने अपने दुर्बल श्वेत हाथों को फैला दिया। मानो वे किसीको पकड़ रही हों। फिर अपने आप ही बोली—कहाँ भागते हो ? डरो मत। मैं तुम्हारी कुछ बुराई करने नहीं आयी हूँ। आओ, मुझे पकड़ लो, मैं तुम्हें निकाल दूँ—नहीं तो तुम डूब जाओगे ! तुमने तो मुझे छोड़ दिया था—तुम तो मुझे छोड़कर भाग गये थे; लेकिन मैं तुम्हें छोड़कर नहीं भागूँगी। मैंने तुम्हें छोड़ना, भूलना, सब चाहा; लेकिन मन पर बस नहीं चला। आज तुम्हें बहुत मुश्किल से पाया है। अब नहीं भागने दूँगी। जल्दी आओ—देखो, वे लहरें जोर से उठ रही हैं। मैं तुम्हें यहाँ इस तरह छोड़कर नहीं जा सकती—चाहे मुझे भी क्यों न डूबना पड़े !

डाक्टर साहब ने चुपके से चपला से पूछा—क्या आप बता सकती हैं कि महेश किसका नाम है ?

चपला ने धीरे से सिर हिलाकर कहा—हाँ, लेकिन अभी नहीं बताऊँगी।

माँजी ने फिर हाथ बढ़ाये। उस समय चपला उनकी खाट के पास चली गयी थी। इसलिये माँजी के हाथों में उसीका हाथ चला गया। स्पर्श होते ही माँजी ने चौंककर आँखें खोल दीं। चपला ने मत्थे पर हाथ फेरते हुए कहा—माँजी, कैसी तबियत है ?

माँजी बिना कुछ उत्तर दिये हुए चपला की तरफ देखने लगीं। फिर बोलीं—तुम कौन हो ?

चपला—माँजी, क्या अपनी इ
माँजी—"नहीं, नहीं, प्रतिभा तो मे
कुछ और कहने जा रही थी कि बीच ही में
साहब बोले—"अभी कुछ मत बोलिये। माँजी
में नहीं हैं"। डाक्टर साहब माँजी का उपचार क
देर बाद माँजी ने फिर आँखें खोलीं। इस बार उन्हें
था। सामने चपला को देखकर वे बोलीं—कौन ? चपल

चपला ने उत्तर दिया—क्या ? माँजी !

माँजी—कुछ नहीं।

उन्होंने फिर आँखें बन्द कर लीं। डाक्टर साहब दुगने उत्साह से शुश्रूषा में लग गये। माँजी ने फिर आँखें खोलीं। इस बार वे धीरे से बोलीं—मैं कहाँ हूँ ?

डाक्टर साहब—आप अपने घर में हैं।

माँजी ने डाक्टर साहब की तरफ इशारा करके चपला से पूछा—चपला, यह यहाँ क्यों आये ? यह तो डाक्टर साहब मालूम होते हैं।

चपला ने जल्दी से उत्तर दिया—हाँ माँजी, ये डाक्टर साहब हैं। जब तुम गंगाजी में डूबी थीं..................।

माँजी बीच ही में बोलीं—कब ? मैं गंगाजी में डूबी थी ?

डाक्टर साहब ने इशारे से चपला को मना किया। चपला चुप हो गई; किन्तु माँजी नहीं मानीं। लाचार होकर चपला बोली—कोई आदमी गंगाजी में डूब रहा था, उसे बचाने के लिये तुम भी गंगाजी में कूदी थीं।

चपला फिर चुप हो गई। थोड़ी देर बाद माँजी बोली—हाँ, वे—वे—नहीं, एक आदमी डूब रहा था। क्या उसे दिखा सकती हो ?

...ुत प्रसन्नता से अपना काम करते थे। ...। केवल दो जने नहीं थे—महेशचन्द्र सदा ...—मालती की मृत्यु का दृश्य एक घड़ी को भी ... आखों के सामने से न हटता। यही दशा प्रतिभा की भी थी। जब वह रात को अकेली अपने कमरे में बैठती, तब उसे ऐसा जान पड़ा मानों मालती हँसती हुई पीछे से आकर कहती—बहिनजी, देखो, तुम्हारे पीछे कौन खड़ा है! तुम्हारे "हृदय का काँटा" फिर आ गया!

Printed by K. P. Dar at The Allahabad Law Journal Pres, Allahabad aad Published by Pt. Lakshmidhar Bajpai, Tarun-Bharat-Granthawali, Daraganj, Allahabad